## Chapter एक

# भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार: परिचय

प्रथम अध्याय का सारांश इस प्रकार है। इस अध्याय में बताया गया है कि देवकी के आठवें पुत्र द्वारा मारे जाने के अपशकुन को सुनकर डरे हुए कंस ने किस तरह देवकी के पुत्रों को एक-एक करके मार डाला।

जब शुकदेव गोस्वामी यदुवंश तथा उसी के साथ चन्द्र देव तथा सूर्य देव के वंशों का वर्णन कर चुके तो महाराज परीक्षित ने उनसे प्रार्थना की कि वे यदुवंश में बलदेव के साथ प्रकट होने वाले भगवान् कृष्ण का तथा इस जगत में उनके द्वारा सम्पन्न कार्यकलापों का वर्णन करें। राजा ने कहा कि कृष्ण दिव्य हैं अतएव उनके कार्यकलापों को समझना मुक्तात्माओं का कार्य है। कृष्ण-लीला का श्रवण ऐसी नाव है, जिससे जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। कसाई या आत्मघाती व्यक्ति को छोड़कर प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य को कृष्ण तथा उनके कार्यकलापों को समझने का प्रयास करना चाहिए।

पाण्डवों के एकमात्र आराध्यदेव कृष्ण थे। जब महाराज परीक्षित अपनी माता उत्तरा के गर्भ में थे

तो कृष्ण ने उन्हें ब्रह्म-शस्त्र के प्रहार से बचाया था। अब महाराज परीक्षित शुकदेव गोस्वामी से पूछते हैं कि रोहिणी-पुत्र भगवान् बलदेव किस तरह देवकी के गर्भ से प्रकट हो सके, कृष्ण मथुरा से वृन्दावन क्यों स्थानान्तरित हुए और वे वहाँ अपने परिवार वालों के साथ किस तरह रहे? कृष्ण ने मथुरा तथा वृन्दावन में क्या किया और उन्होंने अपने मामा कंस का वध क्यों किया? कृष्ण कितने वर्षों तक द्वारका में रहे और उनके कितनी रानियाँ थीं? महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से ये सारे प्रश्न पूछे। उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से यह भी अनुरोध किया कि वे कृष्ण के उन अन्य कार्यों का भी वर्णन करें जिन्हें उन्होंने नहीं पूछा।

जब शुकदेव गोस्वामी कृष्णभावनामृत के विषय में बताने लगे तो महाराज परीक्षित को अपने उपवास से उत्पन्न थकान भूल गई। कृष्ण का वर्णन करने के लिए उत्सुक शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया, ''कृष्ण के कार्यों का वर्णन गंगाजल के समान समस्त ब्रह्माण्ड को शुद्ध बनाने वाला है। वक्ता, प्रश्नकर्ता तथा श्रोता सभी शुद्ध हो जाते हैं।''

एक बार जब समस्त विश्व आसुरी राजाओं की बढ़ती सैन्य शक्ति से बोझिल हो उठा तो पृथ्वी माता ने गाय का रूप धारण किया और उनसे छुटकारा पाने के लिए ब्रह्माजी के पास पहुँची। माता पृथ्वी के सन्ताप पर दया करके ब्रह्माजी शिवजी तथा अन्य देवताओं समेत गाय रूपी धरती को अपने साथ लेकर क्षीर सागर के तट पर पहुँचे और भगवान् विष्णु को, जो दिव्य परमानन्द में एक द्वीप पर शयन कर रहे थे, प्रसन्न करने के लिए स्तुतियाँ कीं। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने महाविष्णु की सलाह समझ कर सूचित किया कि असुरों का भार हटाने के लिए विष्णु पृथ्वी पर प्रकट होंगे। देवताओं को चाहिए कि अपनी अपनी पत्नियों सहित यदुवंश की जनसंख्या बढ़ाने के लिए कृष्ण के संगियों के रूप में प्रकट हों। कृष्ण-कृपा से सबसे पहले अनन्तदेव बलराम के रूप में प्रकट होंगे और कृष्ण की शक्ति योगमाया भी प्रकट होंगी। ब्रह्माजी ने माता पृथ्वी को इसके विषय में सबकुछ बताया और तब वे अपने धाम लौट गये।

जब वसुदेव देवकी से विवाह करके देवकी के भाई कंस द्वारा हाँके जा रहे रथ पर सवार होकर अपने घर लौट रहे थे तभी आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि देवकी का आठवाँ पुत्र कंस का वध करेगा। यह अपशकुन सुनकर कंस देवकी को तत्क्षण मार डालने के लिए उद्यत हुआ किन्तु वसुदेव ने

व्यवहारकुशलता उसे यह कहकर समझाया कि उसे अपनी छोटी बहन को, विशेषत: विवाह के समय पर, नहीं मारना चाहिए। हर देहधारी की मृत्यु अवश्य होगी। हर जीव एक शरीर में कुछ काल तक जीवित रहता है और तब वह दूसरे शरीर में स्थानान्तरित होता है किन्तु दुर्भाग्यवश वह शरीर को आत्मा मान बैठता है। यदि इस भ्रान्त धारणा से कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति को मारना चाहता है, तो उसकी नारकीय के तौर पर निन्दा होती है।

चूँकि कंस को वसुदेव के उपदेशों से सन्तोष नहीं हुआ इसलिए वसुदेव ने एक युक्ति निकाली। उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि वे देवकी की सारी सन्तानों को लाकर कंस को सौंप दिया करेंगे जिन्हें वह मार डाले। तो फिर देवकी को अब मारने से क्या लाभ? कंस को यह प्रस्ताव भा गया। समय आने पर जब देवकी के बच्चा उत्पन्न हुआ तो वसुदेव उस नवजात शिशु को लेकर कंस के पास पहुँचे जो वसुदेव की वदान्यता देखकर चकित रह गया। जब वसुदेव ने वह शिशु कंस को दे दिया तो कुछ बुद्धि दिखाते हुए कंस ने कहा कि चूँकि उसका वध आठवीं सन्तान के द्वारा होना है, तो फिर पहली सन्तान को मारने से क्या लाभ? यद्यपि वसुदेव को कंस के कहने पर विश्वास नहीं हो रहा था किन्तु कंस ने वसुदेव से बालक को वापस ले जाने के लिए कहा परन्तु बाद में जब नारदमुनि कंस के पास पहुँचे और उसे यह रहस्य बताया कि देवतागण यदु तथा वृष्णिवंशों में उत्पन्न होकर उसे मारने का षडयंत्र रच रहे हैं, तो कंस ने इन वंशों में जन्म लेने वाले समस्त बालकों को मार डालने का निश्चय किया और उसने यह भी तय किया कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न सारे बालकों को मार डाला जाय। अतएव उसने वसुदेव तथा देवकी दोनों ही को बन्दी बना लिया और एक-एक करके उनके छह पुत्रों को मारता रहा। नारद ने कंस को यह भी सूचित किया कि कंस अपने पूर्वजन्म में कालनेमि नामक असुर था जिसका वध विष्णु ने किया था। फलस्वरूप कंस यदुवंशियों का महान् शत्रु बन गया। यहाँ तक कि उसने अपने पिता उग्रसेन को भी बन्दी बना लिया क्योंकि वह अकेले राज्य-भोग करना चाहता था।

कृष्ण की लीलाएँ तीन प्रकार की हैं—व्रज लीला, मथुरा लीला तथा द्वारका लीला। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कंध में ९० अध्याय हैं जिनमें इन लीलाओं का वर्णन हुआ है। प्रथम चार अध्यायों में पृथ्वी का भार हटाने के लिए ब्रह्मा द्वारा की गई स्तुतियाँ हैं और भगवान् के प्राकट्य का भी वर्णन है। अध्याय ५ से लेकर ३९वें अध्याय तक कृष्ण की वृन्दावन

लीलाओं का वर्णन है। चालीसवें अध्याय में बतलाया गया है कि कृष्ण ने किस तरह यमुना-जल का आनन्द लूटा और अक्रूर ने किस तरह स्तुतियाँ कीं। अध्याय ४१ से लेकर ५१ तक के ग्यारह अध्यायों में कृष्ण की मथुरा लीलाएँ हैं और अध्याय ५२ से ९० तक के ३९ अध्यायों में कृष्ण की द्वारका लीलाएँ हैं।

उन्तीस से लेकर तैंतीसवें अध्याय तक गोपियों के साथ कृष्ण के नाचने का, अर्थात् *रासलीला* का वर्णन है। अतएव इन पाँच अध्यायों को *रास पञ्चाध्याय* कहा जाता है। और सैंतालीसवाँ अध्याय *भ्रमर गीता* कहलाता है।

**श्रीराजोवाच**

**कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।**
**राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥**

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; कथितः—पहले ही वर्णित हो चुका है, जो; वंश-विस्तारः—वंश का विस्तार से वर्णन; भवता—आपके द्वारा; सोम-सूर्ययोः—चन्द्रदेव तथा सूर्यदेव के; राज्ञाम्—राजाओं का; च—तथा; उभय—दोनों; वंश्यानाम्—वंश के सदस्यों का; चरितम्—चरित्र; परम—श्रेष्ठ; अद्भुतम्—तथा अद्‌भुत।.

**राजा परीक्षित ने कहा : हे प्रभु, आपने चन्द्रदेव तथा सूर्यदेव दोनों के वंशों का, उनके राजाओं के महान् तथा अद्‌भुत चरित्रों सहित विशद वर्णन किया है।**

**तात्पर्य :** नवम स्कन्ध के अन्त में चौबीसवें अध्याय में शुकदेव गोस्वामी ने कृष्ण के कार्यकलापों का सार दे दिया है। उन्होंने बतलाया कि कृष्ण किस प्रकार धरती का बोझ कम करने के लिए स्वयं प्रकट हुए थे, किस तरह उन्होंने गृहस्थ के रूप में लीलाएँ कीं और किस तरह जन्म के तुरन्त बाद उन्हें उनक ी व्रजभूमिलीला में ले जाया गया। परीक्षित महाराज कृष्ण-भक्त होने के कारण भगवान् कृष्ण के विषय में और अधिक सुनना चाह रहे थे। इसीलिए कृष्ण के विषय में कथा कहते रहने तथा विस्तृत जानकारी देने के लिए प्रोत्साहित करने की दृष्टि से उन्होंने शुकदेव गोस्वामी का आभार प्रकट किया कि उन्होंने कृष्ण के कार्यकलापों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। शुकदेव गोस्वामी ने कहा था—

*जातो गतः पितृ-गृहाद् व्रजमेधितार्थो*

*हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः ।*

*उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे*

*आत्मानमात्मनिगमं प्रथयाञ्जनेषु ॥*

‘‘लीलापुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट तो हुए, किन्तु वे तुरन्त ही अपने पिता का घर छोड़कर वृन्दावन चले गये जिससे वहाँ अपने विश्वस्त भक्तों के साथ अपने स्नेहमय सम्बन्धों का विस्तार कर सकें। उन्होंने वृन्दावन में अनेक असुरों का वध किया और बाद में वे द्वारका चले गये जहाँ उन्होंने वैदिक विधि से अनेक पत्नियों के साथ विवाह किया जो स्त्रीरत्ना थीं। उनसे सैकड़ों पुत्र उत्पन्न किये और गृहस्थ जीवन के नियमों की स्थापना करने के लिए अपनी पूजा हेतु अनेक यज्ञ सम्पन्न किये।'' (भागवत ९.२४.६६)

यदुवंश सोम अर्थात् चन्द्रदेव से चले आ रहे कुल से सम्बन्धित था। यद्यपि ग्रहों की ऐसी व्यवस्था है कि सूर्य चन्द्रमा से पहले आता है, किन्तु परीक्षित महाराज ने चन्द्रवंश अर्थात् *सोमवंश* को अधिक सम्मान दिया क्योंकि चन्द्रमा से चले आ रहे यादववंश में कृष्ण अवतीर्ण हुए थे। दो पृथक् क्षत्रिय राजवंश हैं चन्द्रग्रह के राजा से चला आने वाला वंश तथा सूर्यग्रह के राजा से चला आने वाला वंश। जब भी भगवान् अवतीर्ण होते हैं, तो सामान्यतया वे क्षत्रियवंश में प्रकट होते हैं क्योंकि वे धर्म के सिद्धान्तों तथा सत्यमय जीवन की स्थापना करने आते हैं। वैदिक प्रणाली के अनुसार क्षत्रियवंश मानव जाति का रक्षक होता है। जब भगवान् श्रीरामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए तो वे सूर्य देवता से चले आ रहे सूर्यवंश में अवतरित हुए थे, किन्तु जब वे कृष्ण के रूप में प्रकट हुए तो वे चन्द्रदेवता से चले आ रहे यदुवंश में अवतीर्ण हुए। *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय में यदुवंशी राजाओं की लम्बी सूची दी हुई है। सोमवंश तथा सूर्यवंश के सारे राजा महान् तथा शक्तिशाली थे और महाराज परीक्षित ने सबकी बड़ी प्रशंसा की थी (*राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम्* )। फिर भी वे सोमवंश के विषय में और अधिक सुनना चाह रहे थे क्योंकि इसी वंश में कृष्ण अवतीर्ण हुए थे।

*ब्रह्म-संहिता* में भगवान् कृष्ण के परम धाम को चिन्तामणि धाम कहा गया है— *चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्षलक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।* इस धरा पर वृन्दावन धाम उसी धाम का प्रतिरूप है। जैसाकि *भगवद्गीता* (८.२०) में कहा गया है वैकुण्ठलोक में एक अन्य नित्य प्रकृति होती है, जो व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे होती है। व्यक्त जगत को अनेक नक्षत्रों तथा ग्रहों यथा चन्द्रमा तथा सूर्य के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु इसके परे अव्यक्त है, जो देहधारियों के लिए अदृश्य होता है। इस अव्यक्त पदार्थ के परे आध्यात्मिक लोक है, जिसे *भगवद्गीता* में परम तथा नित्य

कहा गया है। इस लोक का कभी संहार नहीं होता। यद्यपि भौतिक प्रकृति का बारम्बार सृजन तथा संहार होता रहता है, किन्तु आध्यात्मिक प्रकृति शाश्वत रहती है। *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कन्ध में उस आध्यात्मिक प्रकृति, उस आध्यात्मिक जगत का वर्णन वृन्दावन, गोलोक वृन्दावन या व्रजधाम के रूप में हुआ है। नवम स्कन्ध के उपर्युक्त श्लोक *जातोगत: पितृगृहाद्* का विस्तृत वर्णन इस दशम स्कन्ध में मिलेगा।

**यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।**
**तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस न: ॥ २ ॥**

शब्दार्थ

यदो:—यदु या यदुवंश का; च—भी; धर्म-शीलस्य—जो धर्मनिष्ठ हैं; नितराम्—अत्यन्त योग्य; मुनि-सत्तम—हे मुनियों में श्रेष्ठ अथवा मुनियों के राजा ( शुकदेव गोस्वामी ); तत्र—उस वंश में; अंशेन—अपने अंश बलदेव के साथ; अवतीर्णस्य—अवतार रूप में प्रकट; विष्णो:—भगवान् विष्णु के; वीर्याणि—महिमामय कार्यकलाप; शंस—कृपया वर्णन करें; न:—हमसे।.

**हे मुनिश्रेष्ठ, आप परम पवित्र तथा धर्मशील यदुवंशियों का भी वर्णन कर चुके हैं। अब हो सके तो कृपा करके उन भगवान् विष्णु या कृष्ण के अद्भुत महिमामय कार्यकलापों का वर्णन करें जो यदुवंश में अपने अंश बलदेव के साथ प्रकट हुए हैं।**

**तात्पर्य :** *ब्रह्म-संहिता* (५.१) में बतलाया गया है कि *विष्णुतत्त्व* के उद्गम कृष्ण ही हैं :

*ईश्वर: परम: कृष्ण: सच्चिदानन्दविग्रह: ।*

*अनादिरादिर्गोविन्द: सर्वकारणकारणम् ॥*

''गोविन्द कहे जाने वाले कृष्ण ही परम नियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं क्योंकि वे समस्त कारणों के कारण हैं।''

*यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य*

*जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथा: ।*

*विष्णुर्महान स इह यस्य कलाविशेषो*

*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥*

''असंख्य ब्रह्माण्डों के प्रधान ब्रह्मागण महाविष्णु के एक श्वास की अवधि के बराबर जीवित रहते हैं। महाविष्णु जिन आदि भगवान् गोविन्द के अंशमात्र हैं, मैं उनकी पूजा करता हूँ।'' ( *ब्रह्म-संहिता*

५.४८)।

गोविन्द या कृष्ण आदि भगवान् हैं। *कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।* यहाँ तक कि वे महाविष्णु, जिनकी श्वास से करोड़ों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं, कृष्ण के *कला विशेष* अर्थात् अंश के भी अंश हैं। महाविष्णु संकर्षण के अंश (कला) हैं, जो नारायण के अंश हैं। नारायण *चतुर्व्यूह* के और चतुर्व्यूह कृष्ण के प्रथम प्राकट्य बलदेव के अंश हैं। अत: जब बलदेव समेत कृष्ण आविर्भूत हुए तो उनके साथ सारे के सारे विष्णुतत्त्व प्रकट हुए।

महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से प्रार्थना की कि वे कृष्ण तथा उनके महिमामय कार्यकलापों का वर्णन करें। इस श्लोक का एक दूसरा भी अर्थ निकलता है। यद्यपि शुकदेव गोस्वामी सबसे बड़े मुनि थे तो भी वे कृष्ण का आंशिक (*अंशेन*) वर्णन ही कर सके क्योंकि कृष्ण का पूरा-पूरा वर्णन कोई नहीं कर सकता। कहा जाता है कि अनन्तदेव के हजारों सिर हैं और यद्यपि वे अपनी हजारों जीभों से कृष्ण का वर्णन करने का प्रयत्न करते हैं, तो भी यह वर्णन अधूरा ही रहता है।

**अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावन: ।**
**कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥**

शब्दार्थ

अवतीर्य—अवतार लेकर; यदो: वंशे—यदुवंश में; भगवान्—भगवान्; भूत-भावन:—विराट जगत के कारणस्वरूप; कृतवान्—सम्पन्न किया; यानि—जो भी (कार्य); विश्व-आत्मा—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के परमात्मा; तानि—उन सभी (कार्यों) को; न:—हमसे; वद—कहें; विस्तरात्—विस्तार से।

**परमात्मा अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण, जो विराट जगत के कारण हैं, यदुवंश में प्रकट हुए। आप कृपा करके मुझे उनके यशस्वी कार्यकलापों तथा उनके चरित्र का आदि से लेकर अन्त तक वर्णन करें।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में आये *कृतवान् यानि* शब्द सूचित करते हैं कि इस धरा में रहते हुए कृष्ण ने जितने भी कार्यकलाप किये वे मानव समाज के लिए लाभप्रद हैं। यदि धर्मवेत्ता, दार्शनिक तथा सामान्य लोग कृष्ण के कार्यकलापों का केवल श्रवण करें तो उनको मुक्ति मिल सकती है। हमने कई बार कहा है कि कृष्णकथा दो प्रकार की है—एक तो *भगवद्गीता* जिसे भगवान् कृष्ण ने अपने विषय में कहा है और दूसरी *श्रीमद्भागवत* जिसे शुकदेव गोस्वामी ने कृष्ण की महिमा के विषय में कहा है। जो भी व्यक्ति कृष्णकथा में थोड़ी सी भी रुचि दिखलाता है, वह मुक्ति प्राप्त करता है। *कीर्तनाद् एव कृष्णस्य*

*मुक्तसंग: परं व्रजेत्* ( *भागवत* १२.३.५१ )। केवल कीर्तन करने अथवा बारम्बार कृष्णकथा कहने से मनुष्य कलियुग के कल्मष से मुक्त हो जाता है। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने उपदेश दिया है— *यारे देख, तारे कह 'कृष्ण' उपदेश* ( *चैतन्य-चरितामृत,* मध्य ७.१२८ )। कृष्णभावनामृत का उद्देश्य है—कृष्ण के विषय में सुनकर भवबन्धन से निवृत्त हो जाना।

**निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्**
**भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।**
**क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्**
**पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४॥**

शब्दार्थ

निवृत्त—मुक्त; तर्षैः—काम या भौतिक कार्यों से; उपगीयमानात्—वर्णित या गाया जाने वाला; भव-औषधात्—भौतिक रोग की सही औषधि से; श्रोत्र—कानों से सुनने की विधि; मनः—मन के लिए विचार का विषय; अभिरामात्—ऐसे महिमा-वर्णन की सुहावनी ध्वनि से; कः—कौन; उत्तमश्लोक—भगवान् का; गुण-अनुवादात्—ऐसे कार्यों का वर्णन करने से; पुमान्—मनुष्य; विरज्येत—अपने को विलग रख सकता है; विना—रहित; पशु-घ्नात्—कसाई अथवा अपने आप का ही वध करने वाले से।

**भगवान् की महिमा का वर्णन परम्परा-पद्धति से किया जाता है अर्थात् यह अध्यात्मिक गुरु से शिष्य तक पहुँचाया जाता है। ऐसे वर्णन का आनन्द उन लोगों को मिलता है, जो इस जगत के मिथ्या, क्षणिक वर्णन में रुचि नहीं रखते। भगवान् का गुणगान जन्म-मृत्यु के चक्कर में फँसे बद्धजीवों के लिए उपयुक्त औषधि है। अतएव कसाई ( पशुघाती ) या अपने को ही मारने वाले ( आत्मघाती ) के अतिरिक्त भगवान् की महिमा को सुनना कौन नहीं चाहेगा?**

**तात्पर्य :** भारत में सामान्य लोगों के बीच यह आम प्रथा है कि बारम्बार जन्म-मरण के रोग से छुटकारा पाने के लिए वे *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* से कृष्ण के विषय में सुनते हैं। यद्यपि अब भारत पतित हो चुका है, किन्तु यह समाचार मिलते ही कि अमुक व्यक्ति *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* पर बोलेगा, अब भी हजारों लोग सुनने के लिए एकत्र हो जाते हैं। किन्तु यह श्लोक इंगित करता है कि *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* का ऐसा पाठ ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए जो भौतिक इच्छाओं से पूरी तरह मुक्त हो चुके हों ( *निवृत्ततर्षै* )। इस जगत में ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक सारे जीव इन्द्रियभोग की भौतिक इच्छा से पूर्ण हैं और हर प्राणी इन्द्रियतृप्ति में लगा हुआ है, किन्तु इस तरह लगे रहने पर कृष्णकथा के महत्त्व को, चाहे वह *भगवद्गीता* के रूप में हो, चाहे

*श्रीमद्भागवत* के रूप में, पूरी तरह नहीं समझा जा सकता।

यदि हम मुक्तपुरुषों के मुख से भगवान् की महिमा के विषय में सुनें तो इससे भवबन्धन से अवश्य छूट सकते हैं, किन्तु *श्रीमद्भागवत* के पेशेवर वाचकों से सुनने पर वास्तव में मुक्ति-प्राप्ति में कोई सहायता नहीं मिल सकती है। कृष्णकथा अतीव सरल है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि कृष्ण परमेश्वर हैं। वे स्वयं बतलाते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—हे अर्जुन! मुझसे श्रेष्ठ कोई सत्य नहीं है (*भगवद्गीता* ७.७)। केवल इतना ही जान लेने से कि कृष्ण परमेश्वर हैं, मुक्त हुआ जा सकता है। किन्तु इस कलियुग में लोग असली लाभ से वंचित रहते हैं क्योंकि वे ऐसे धूर्त व्यक्तियों से *भगवद्गीता* सुनना पसन्द करते हैं, जो *भगवद्गीता* को यथारूप में प्रस्तुत न करके उसे अपनी इच्छानुसार तोड़ते-मरोड़ते हैं। बड़े-बड़े विद्वान, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक अपने ही दूषित तरीके से *भगवद्गीता* पर प्रवचन करते हैं और सामान्य लोग इन्हीं से सुनते हैं क्योंकि वे किसी भक्त से भगवान् के गुणानुवाद को सुनने में रुचि नहीं रखते। भक्त वह है, जो भगवान् की सेवा करने के अतिरिक्त *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* का पाठ करते हुए कोई अन्य प्रयोजन नहीं रखता। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने हम सबको सलाह दी है कि स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से ही भगवान् का गुणानुवाद सुना जाय (*भागवत परो दिय भागवत स्थाने*)। जब तक कोई कृष्णभावनामृत विज्ञान में सिद्धात्मा न हो तब तक नवदीक्षित को चाहिए कि वह उससे भगवान् के विषय में सुनाने के लिए न कहे क्योंकि श्रील सनातन गोस्वामी ने *पद्मपुराण* से निम्नलिखित उद्धरण देते हुए ऐसा करने से मना किया है—

*अवैष्णव मुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम्।*
*श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः॥*

जो वैष्णव-आचरण वाला न हो उससे कथा नहीं सुननी चाहिए। वैष्णव तो *निवृत्त-तृष्ण* होता है—उसका कोई भौतिक उद्देश्य नहीं होता क्योंकि उसका एकमात्र उद्देश्य कृष्णभावनामृत का प्रचार करना होता है। तथाकथित विद्वान, दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ स्वार्थवश *भगवद्गीता* के अर्थ को तोड़-मरोड़ कर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। इसीलिए यह श्लोक सावधान करता है कि कृष्णकथा का वाचन वही करे जो *निवृत्त-तृष्ण* हो। शुकदेव गोस्वामी *श्रीमद्भागवत* के आदर्श उपयुक्त वाचक हैं और मृत्यु का सामना करने के पूर्व अपना राज्य तथा परिवार को किसी उद्देश्य से छोड़ने वाले परीक्षित

महाराज आदर्श श्रोता हैं। *श्रीमद्भागवत* का सुयोग्य वाचक बद्धजीवों को सही औषधि ( *भवौषधि* ) प्रदान करता है। इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसे योग्य प्रचारकों को प्रशिक्षित करने में प्रयत्नशील है, जो सारे जगत में *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* का वाचन कर सकें जिससे विश्वभर के सामान्यजन इस आन्दोलन का लाभ उठा सकें और भौतिक संसार के तीनों तापों से छूट सकें।

*भगवद्गीता* के आदेश तथा *श्रीमद्भागवत* के वर्णन इतने मनोहारी हैं कि भौतिक संसार के तीनों तापों से तप्त प्राय: प्रत्येक व्यक्ति इन ग्रंथों में से भगवान् की महिमा को सुनना चाहेगा और मुक्ति के मार्ग में लाभ उठाना चाहेगा। किन्तु दो प्रकार के लोग कभी-भी *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* के सन्देश को सुनने में रुचि नहीं लेंगे—एक वे जो आत्महत्या करने पर तुले हैं और दूसरे वे जो अपने स्वाद के लिए गौवों तथा अन्य पशुओं का वध करने पर तुले हुए हैं। यद्यपि ऐसे लोग भागवत-सप्ताह के समय *श्रीमद्भागवत* सुनने का दिखावा करते हैं, किन्तु यह कर्मीजनों की दूसरी सृष्टि है जिन्हें ऐसे कृत्य से कोई लाभ नहीं मिल सकता। इस सम्बन्ध में *पशुघ्नात्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *पशुघ्न* का अर्थ है ''कसाई।'' उच्चत्तर लोकों में जाने के लिए कर्मकाण्डी व्यक्तियों को यज्ञ करते समय पशुओं का वध करना होता है इसीलिए भगवान् बुद्धदेव ने वेदों के प्रमाण का तिरस्कार किया क्योंकि वे पशुबलि को रोकना चाहते थे जिनकी वैदिक अनुष्ठानों में संस्तुति की गई है।

*निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं*

*सदयहृदय दर्शितपशुघातं*

*केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे*

( *गीत गोविन्द* )

यद्यपि वैदिक उत्सवों में पशुबलि को मान्यता प्राप्त है, किन्तु ऐसे उत्सवों के लिए जो व्यक्ति पशुओं का वध करते हैं, वे कसाई ( *पशुघ्न* ) माने जाते हैं। भला कसाइयों को कृष्णभावनामृत में कैसे रुचि हो सकती है जब उन्हें भौतिक आकर्षण मिला रहता है? उनकी एकमात्र रुचि नश्वर शरीर के लिए सुविधाएँ उत्पन्न करने में होती है—

*भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।*

*व्यवसायात्मिका बुद्धि: समाधौ न विधीयते॥*

"जो लोग इन्द्रियभोग तथा भौतिक ऐश्वर्य के प्रति आसक्त हैं और जो ऐसी वस्तुओं से मोहग्रस्त रहते हैं उनके मन में भगवान् की भक्ति के लिए दृढ़ संकल्प नहीं बन पाता।" (भगवद्गीता २.४४) श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—

*मनुष्य जन्म पाइया, राधा-कृष्ण ना भजिया*

*जानिया शुनिया विष खाइनु*

जो कृष्णभावनाभावित नहीं है और इस तरह जो भगवान् की सेवा में अपने को नहीं लगाता वह भी *पशुघ्न* है क्योंकि वह जानबूझ कर विष पीता है। ऐसे व्यक्ति को कृष्णकथा में रुचि नहीं होती क्योंकि उसमें इन्द्रियतृप्ति की लालसा शेष रहती है। वह *निवृत्ततृष्ण* नहीं होता। जैसाकि कहा गया है—*त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः।* जिन्हें *त्रिवर्ग* अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम में रुचि रहती है वे भौतिक पद प्राप्त करने तथा उसके द्वारा इन्द्रियतृप्ति के लिए अच्छी-अच्छी सुविधाएँ प्राप्त करने के निमित्त धार्मिक होते हैं। ऐसे लोग अपने को जानबूझ कर जन्म-मरण के चक्र में डालकर अपनी हत्या करते हैं। वे कृष्णभावनामृत में कभी-भी रुचि नहीं ले सकते।

कृष्णकथा के लिए वक्ता तथा श्रोता होना चाहिए और ये दोनों कृष्णभावनामृत में तभी रुचि ले सकेंगे जब उन्हें भौतिक कथाओं में रुचि न हो। वास्तव में यह हर कोई देख सकता है कि जो लोग कृष्णभावनाभावित हैं उनमें यह प्रवृत्ति स्वतः उत्पन्न होती है। यद्यपि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तगण तरुण व्यक्ति हैं, किन्तु वे भौतिकतावादी अखबार, पत्रिकाएँ इत्यादि नहीं पढ़ते क्योंकि उन्हें ऐसी कथाओं में कोई रुचि नहीं होती (*निवृत्ततर्षै*)। वे देहात्मबुद्धि का सर्वथा परित्याग कर देते हैं। गुरु उत्तमश्लोक अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विषयक कथाओं को कहता है और शिष्य ध्यान से उन्हें सुनता है। जब तक दोनों भौतिक इच्छाओं से मुक्त नहीं हो लेते, तब तक उन्हें कृष्णभावनामृत की कथाओं में रुचि नहीं हो सकती। गुरु तथा शिष्य को कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ समझने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि कृष्ण को समझने तथा कृष्ण के विषय में बातें करने मात्र से ही व्यक्ति पूर्णतया विद्वान बन सकता है (*यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति*)। भगवान् हर एक के हृदय में आसीन रहता है और उनकी कृपा से भक्त तो भगवान् से ही सीधे आदेश प्राप्त करता है जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् ने कहा है—

*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।*

*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्॥*

"मैं हर एक के हृदय में आसीन हूँ और मुझी से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होते हैं। सारे वेदों के द्वारा मैं ही वेद्य हूँ। मैं ही वेदान्त का रचयिता और वेदों का ज्ञाता हूँ।" कृष्णभावनामृत इतना उच्च है कि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति गुरु के निर्देशन से *श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता* तथा अन्य वैदिक साहित्य में प्राप्य कृष्णकथा को पढ़कर तुष्ट रहता है। जब कृष्ण के विषय में केवल बातें करना इतना सुहावना लगता है, तो फिर कृष्ण की सेवा करना कितना सुहावना होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है।

जब मुक्तगुरु तथा उसके शिष्य के मध्य कृष्णकथा पर वार्ताएँ होती हैं, तो अन्य लोग भी कभी कभी इन कथाओं को सुनकर लाभ उठाते हैं। ये कथाएँ जन्म तथा मृत्यु के चक्र को रोकने में रामबाण औषधि का कार्य करती हैं। बारम्बार जन्म तथा मृत्यु का चक्र, जिससे मनुष्य को पुनः-पुनः विभिन्न शरीर ग्रहण करने पड़ते हैं, *भव* या *भवरोग* कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति इच्छा या अनिच्छा से कृष्णकथा सुनता है, तो उसका भवरोग अर्थात् जन्म-मरण का रोग निश्चय ही जाता रहता है। इसलिए कृष्णकथा को *भवौषधि*—जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकने की औषधि—कहा गया है। कर्मीजन जो भौतिक इन्द्रियतृप्ति में आसक्त हैं, सामान्यतया अपनी भौतिक इच्छाओं का परित्याग नहीं कर सकते, किन्तु कृष्णकथा ऐसी रामबाण औषधि है कि कृष्णकथा सुनने के लिए प्रेरित होने पर वह इस रोग से निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है। इसके ज्वलन्त उदाहरण ध्रुव महाराज हैं, जो अपनी तपस्या के बाद अत्यन्त तुष्ट थे। जब भगवान् ने उन्हें वर देना चाहा तो ध्रुव ने वर लेने से मना कर दिया। *स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*—हे प्रभु! मैं पूरी तरह से तुष्ट हो गया हूँ, मुझे इन्द्रियतृप्ति के लिए कोई वर नहीं चाहिए। हम देख रहे हैं कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन में युवकों तथा युवतियों तक ने अपनी बुरी से बुरी आदतें जैसे अवैध यौन, मांसाहार, नशा तथा जुआ खेलना छोड़ दी हैं। चूँकि कृष्णभावनामृत इतना प्रबल है कि इससे उन्हें पूर्ण सन्तोष मिलता है अतएव वे भौतिक इन्द्रियतृप्ति में रुचि नहीं लेते।

**पितामहा मे समरेऽमरञ्जयै-**

देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं
कृत्वातरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥
द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं
सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो
मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥
वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजा-
मन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ।
प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च
मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

पितामहाः—पाँचों पाण्डव, जो मेरे बाबा हैं; मे—मेरे; समरे—कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में; अमरम् जयैः—युद्धभूमि में देवताओं पर विजय प्राप्त करने वाले योद्धाओं समेत; देवव्रत-आद्य—भीष्मदेव तथा अन्य; अतिरथैः—महा सेनापतियों के साथ; तिमिङ्गिलैः—तिमिंगिल ( बड़ी मछली ) के समान; दुरत्ययम्—दुर्लंघ्य; कौरव-सैन्य-सागरम्—कौरवों के एकत्र सैनिकों के सागर को; कृत्वा—मानकर; अतरन्—पार कर लिया; वत्स-पदम्—गो खुर के समान; स्म—था; यत्-प्लवाः—कृष्ण की चरणकमल रूपी नाव का आश्रय; द्रौणि—अश्वत्थामा के; अस्त्र—ब्रह्मास्त्र से; विप्लुष्टम्—आक्रमण करके जलाया गया; इदम्—यह; मत्-अङ्गम्—मेरा शरीर; सन्तान-बीजम्—एकमात्र बचा हुआ बीज, वंश का अन्तिम उत्तराधिकारी; कुरु-पाण्डवानाम्—कौरवों तथा पाण्डवों का ( कुरुक्षेत्र में मेरे अतिरिक्त सभी लोग मारे जा चुके हैं ); जुगोप—शरण दी; कुक्षिम्—गर्भ में; गतः—स्थापित; आत्त-चक्रः—हाथ में चक्र लिए; मातुः—माता का; च—भी; मे—मेरी; यः—जो भगवान्; शरणम्—शरण; गतायाः—ग्रहण कर ली है; वीर्याणि—दिव्य गुणों का गान; तस्य—उस ( भगवान् ) का; अखिल-देह-भाजाम्—समस्त देहधारी जीवों का; अन्तः बहिः—भीतर तथा बाहर; पूरुष—परम पुरुष का; काल-रूपैः—नित्य समय के रूपों में; प्रयच्छतः—देने वाला; मृत्युम्—मृत्यु को; उत—ऐसा कहा जाता है; अमृतम् च—तथा शाश्वत जीवन; माया-मनुष्यस्य—भगवान् का, जो अपनी शक्ति से मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं; वदस्व—कृपा करके कहें; विद्वन्—हे विद्वान ( शुकदेव गोस्वामी )।

कृष्ण के चरणकमल रूपी नाव को लेकर मेरे बाबा अर्जुन तथा अन्यों ने उस कुरुक्षेत्र युद्धस्थल रूपी सागर को पार कर लिया जिसमें भीष्मदेव जैसे सेनापति उन बड़ी-बड़ी मछलियों के तुल्य थे, जो उन्हें आसानी से निगल गई होतीं। मेरे पितामहों ने भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से इस दुर्लंघ्य सागर को इतनी सरलता से पार कर लिया मानो कोई गोखुर का चिन्ह हो। चूँकि मेरी माता ने सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण की थी अतः उन्होंने उनके गर्भ में प्रवेश करके मुझे बचा लिया जो कौरवों तथा पाण्डवों का अन्तिम बचा हुआ उत्तराधिकारी था और जिसे अश्वत्थामा ने अपने ब्रह्मास्त्र से नष्टप्राय कर दिया था। भगवान् कृष्ण ने समस्त देहधारी जीवों के भीतर तथा बाहर शाश्वत काल के रूपों में—यथा परमात्मा तथा विराट रूपों में—अपनी शक्ति से प्रकट होकर हर एक को क्रूर मृत्यु के रूप में या जीवन के रूप में मोक्ष प्रदान किया। कृपया उनके दिव्य गुणों का वर्णन करके मुझे प्रबुद्ध कीजिए।

**तात्पर्य :** जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.५८) में में कहा गया है—

*समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं*

*महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।*

*भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं*

*पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥*

''जिसने विराट जगत के आश्रय तथा मुरारि अर्थात् मुर नामक असुर के शत्रु, भगवान् के चरणकमल रूपी नाव को पकड़ लिया है उसके लिए यह भवसागर गोखुर में भरे जल के समान है। उसका लक्ष्य *परं पदं* अर्थात् वैकुण्ठ होता है जहाँ भौतिक कष्टों का नामोनिशान नहीं रहता, न कि वह स्थान जहाँ पग-पग पर संकट है।''

जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की शरण लेता है उसे तुरन्त ही भगवान् सुरक्षा प्रदान करते हैं। *भगवद्गीता* (१८.६६) में भगवान् वचन देते हैं—*अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः*—मैं तुम्हें सारे पापों से उबार लूँगा; तुम डरो मत—भगवान् कृष्ण की शरण में आने से मनुष्य सबसे सुरक्षित आश्रय प्राप्त कर लेता है। इस तरह जब पाण्डवों ने कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली तो वे कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में सुरक्षित दल में आ गये। इसीलिए परीक्षित महाराज अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कृष्ण का चिन्तन करते हुए कृतज्ञता का अनुभव कर रहे थे। कृष्णभावनामृत का यह आदर्श फल है—*अन्ते नारायणस्मृतिः ।* यदि मृत्यु के समय कोई कृष्ण का स्मरण कर सके तो उसका जीवन सफल हो जाता है। इसीलिए परीक्षित महाराज ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कृष्ण की अनेक कृतज्ञताओं के कारण कृष्ण का निरन्तर चिन्तन करने की बुद्धिमानी की। कृष्ण ने महाराज परीक्षित के बाबाओं को कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में बचाया था और कृष्ण ने स्वयं महाराज परीक्षित की उस समय रक्षा की थी जब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र से उन पर आक्रमण किया था। पाण्डव परिवार के लिए कृष्ण एक मित्र तथा आराध्यदेव के तुल्य थे। भगवान् कृष्ण का पाण्डवों के साथ व्यक्तिगत संपर्क होने के अतिरिक्त, कृष्ण सारे जीवों के परमात्मा हैं और हर एक को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं—भले ही कोई शुद्ध भक्त हो या न हो। उदाहरणार्थ, कंस बिलकुल भक्त नहीं था फिर भी उसे मारने के बाद कृष्ण ने उसे मोक्ष प्रदान किया। कृष्णभावनामृत हर एक के लिए लाभप्रद है, चाहे वह शुद्ध भक्त हो या

अभक्त। कृष्णभावनामृत की यही महिमा है। यह विचार कर भला कौन ऐसा होगा जो कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करेगा? इस श्लोक में कृष्ण को *मायामनुष्य* कहा गया है क्योंकि वे बिलकुल मनुष्य की ही तरह अवतरित होते हैं। वे कर्मियों या सामान्य जीवों की तरह यहाँ आने के लिए बाध्य नहीं हैं प्रत्युत वे अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा (*सम्भवाम्यात्ममायया*) पतित बद्धजीवों पर कृपा दिखाने के लिए प्रकट होते हैं। कृष्ण अपने *सच्चिदानन्द विग्रह* रूप में सदैव स्थित रहते हैं और जो कोई उनकी सेवा करता है, वह भी अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप में स्थित हो जाता है (*स्वरूपेण व्यवस्थितिः*)। यही मानव जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है।

**रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया ।**
**देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥**

शब्दार्थ

रोहिण्याः—बलदेव की माता रोहिणी देवी का; तनयः—पुत्र; प्रोक्तः—विख्यात; रामः—बलराम; सङ्कर्षणः—संकर्षण और कोई नहीं, बलराम हैं, जो चतुर्व्यूह (संकर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा वासुदेव) में प्रथम हैं; त्वया—आपके द्वारा (ऐसा कहा जाता है); देवक्याः—कृष्ण की माता, देवकी का; गर्भ-सम्बन्धः—गर्भ सम्बन्धी; कुतः—कैसे; देह-अन्तरम्—शरीरों के स्थानान्तरण के; विना—बिना.

**हे शुकदेव गोस्वामी, आप पहले ही बता चुके हैं कि द्वितीय चतुर्व्यूह से सम्बन्धित संकर्षण रोहिणी के पुत्र बलराम के रूप में प्रकट हुए। यदि बलराम को एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित न किया गया होता तो यह कैसे सम्भव हो पाता कि वे पहले देवकी के गर्भ में रहते और बाद में रोहिणी के गर्भ में? कृपया मुझसे इसकी व्याख्या कीजिए।**

**तात्पर्य :** यहाँ पर एक प्रश्न उठाया गया है, जो विशेष रूप से साक्षात् संकर्षण, बलराम को समझने की ओर लक्ष्यित है। यह प्रसिद्ध है कि बलराम रोहिणी के पुत्र थे, किन्तु यह भी ज्ञात है कि वे देवकी के पुत्र थे। परीक्षित महाराज इस रहस्य को जानना चाहते थे कि बलराम देवकी तथा रोहिणी दोनों ही के पुत्र किस तरह थे?

**कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ।**
**क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥**

शब्दार्थ

कस्मात्—क्यों; मुकुन्दः—हर एक को मोक्ष देने वाले कृष्ण; भगवान्—भगवान्; पितुः—अपने पिता (वसुदेव) के; गेहात्—घर से; व्रजम्—व्रजधाम या व्रजभूमि; गतः—गये; क्व—कहाँ; वासम्—रहने के लिए रखा; ज्ञातिभिः—उनके सम्बन्धियों के; सार्धम्—साथ; कृतवान्—कर दिया; सात्वताम् पतिः—समस्त वैष्णव भक्तों के स्वामी।

**भगवान् कृष्ण ने अपने पिता वसुदेव का घर क्यों छोड़ा और अपने को वृन्दावन में नन्द के घर क्यों स्थानान्तरित किया? यदुवंश के स्वामी अपने सम्बन्धियों के साथ वृन्दावन में कहाँ रहे?**

**तात्पर्य :** ये कृष्ण के परिभ्रमण-विषयक प्रश्न हैं। मथुरा में वसुदेव के घर में जन्म लेने के तुरन्त बाद कृष्ण यमुना के उस पार गोकुल गाँव चले गये और कुछ दिनों के बाद वे अपने पिता, माता तथा अन्य सम्बन्धियों के साथ नन्द गाँव, वृन्दावन चले गये। महाराज परीक्षित कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं को सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। *श्रीमद्भागवत* का यह सम्पूर्ण स्कन्ध वृन्दावन तथा द्वारका में सम्पन्न लीलाओं से भरा पड़ा है। प्रथम चालीस अध्यायों में कृष्ण के वृन्दावन के कार्यकलापों का वर्णन हुआ है और अगले पचास अध्यायों में कृष्ण की द्वारका लीलाओं का वर्णन है। महाराज परीक्षित ने कृष्ण के विषय में सुनने की अपनी इच्छापूर्ति के लिए शुकदेव गोस्वामी से प्रार्थना की कि वे इन लीलाओं का विस्तार से वर्णन करें।

**व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ।**
**भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धातदर्हणम् ॥ १० ॥**

शब्दार्थ

व्रजे—वृन्दावन में; वसन्—रहते हुए; किम् अकरोत्—उन्होंने क्या किया; मधुपुर्याम्—मथुरा में; च—तथा; केशवः—केशी के संहार करने वाले, कृष्ण ने; भ्रातरम्—भाई; च—तथा; अवधीत्—मारा; कंसम्—कंस को; मातुः—अपनी माता के; अद्धा—प्रत्यक्ष; अ-तत्-अर्हणम्—शास्त्र जिसकी अनुमति नहीं देते।

**भगवान् कृष्ण वृन्दावन तथा मथुरा दोनों जगह रहे तो वहाँ उन्होंने क्या किया? उन्होंने अपनी माता के भाई ( मामा ) कंस को क्यों मारा जबकि शास्त्र ऐसे वध की रंचमात्र भी अनुमति नहीं देते?**

**तात्पर्य :** मामा का पद पिता के तुल्य होता है। मामा के सन्तान न होने पर भाञ्जा ही उसकी संपत्ति का वैध उत्तराधिकारी बनता है। तो फिर कृष्ण ने अपनी माता के भाई को क्यों मारा? महाराज परीक्षित को ये बातें जानने की अत्यन्त उत्सुकता थी।

**देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ।**
**यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥**

शब्दार्थ

देहम्—शरीर; मानुषम्—मनुष्य की ही तरह; आश्रित्य—स्वीकार करके; कति वर्षाणि—कितने वर्षों तक; वृष्णिभि:—वृष्णि वंश में उत्पन्न होने वालों के साथ में; यदु-पुर्याम्—यदुओं के आवास-स्थानों में, द्वारका में; सह—साथ; अवात्सीत्—भगवान् रहे; पत्न्य:—पत्नियाँ; कति—कितनी; अभवन्—हुईं; प्रभो:—भगवान् के.

**भगवान् कृष्ण का शरीर भौतिक नहीं है, फिर भी वे मानव के रूप में प्रकट होते हैं। वे वृष्णि के वंशजों के साथ कितने वर्षों तक रहे? उनके कितनी पत्नियाँ थीं? वे द्वारका में कितने वर्षों तक रहे?**

**तात्पर्य :** अनेक स्थलों पर भगवान् को *सच्चिदानन्द विग्रह* अर्थात् दिव्य आनन्दमय शरीर वाले कहा गया है। उनका स्वरूप *नराकृति* अर्थात् मनुष्य जैसा है। यहाँ पर इसी भाव को *मानुषम् आश्रित्य* द्वारा दुहराया गया है, जो इस बात का सूचक है कि वे मनुष्य जैसा ही शरीर धारण करते हैं। सर्वत्र इसकी पुष्टि हुई है कि कृष्ण *निराकार* नहीं हैं। उनका स्वरूप मनुष्य जैसा है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

**एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ।**
**वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥**

शब्दार्थ

एतत्—ये सारी बातें; अन्यत् च—तथा अन्य बातें भी; सर्वम्—सारी बातें; मे—मुझको; मुने—हे मुनि; कृष्ण-विचेष्टितम्—भगवान् कृष्ण के कार्यकलापों को; वक्तुम्—बतलाने में; अर्हसि—समर्थ हैं; सर्व-ज्ञ—सब कुछ जानने वाले; श्रद्दधानाय—श्रद्धावान होने के कारण; विस्तृतम्—विस्तार से।.

**हे महामुनि, आप कृष्ण के विषय में सब कुछ जानते हैं अतएव उन सारे कार्यकलापों का वर्णन विस्तार से करें जिनके बारे में मैंने पूछा है तथा उनके बारे में भी जिनके विषय में मैंने नहीं पूछा क्योंकि उन पर मेरा पूर्ण विश्वास है और मैं उन सबको सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।**

**नैषातिदु:सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।**
**पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ १३ ॥**

शब्दार्थ

न—नहीं; एषा—यह सब; अति-दु:सहा—सहने में अत्यन्त कठिन; क्षुत्—भूख; माम्—मुझको; त्यक्त-उदम्—जल ग्रहण करना छोड़ देने के बाद; अपि—भी; बाधते—बाधा नहीं डालता; पिबन्तम्—पीते रहने पर; त्वत्-मुख-अम्भोज-च्युतम्—आपके कमलमुख से निकला हुआ; हरि-कथा-अमृतम्—कृष्ण कथा का अमृत।.

**मृत्यु द्वार पर होते हुए अपने व्रत के कारण मैंने जल ग्रहण करना भी छोड़ दिया है फिर भी आपके कमलमुख से निकले कृष्ण-कथा रूपी अमृत का पान करने से मेरी असह्य भूख तथा प्यास मुझे किसी तरह भी बाधा नहीं पहुँचा रही।**

**तात्पर्य :** सात दिनों के भीतर मरने की तैयारी करने के उद्देश्य से महाराज परीक्षित ने भोजन तथा जल ग्रहण करना छोड़ दिया था। मनुष्य होने के नाते उनको भूख तथा प्यास लगनी स्वाभाविक थी इसलिए शुकदेव गोस्वामी कृष्णकथा बन्द करना चाह रहे होंगे, किन्तु महाराज परीक्षित उपवास रखने के बावजूद भी थके हुए नहीं थे। उन्होंने कहा, ''मेरे उपवास से उत्पन्न भूख तथा प्यास मुझे नहीं सतातीं। एक बार मैं अत्यन्त प्यासा था, तो जल पीने के लिए शमीक मुनि के आश्रम गया था, किन्तु मुनि ने मुझे जल नहीं दिया। अतएव मैंने उस मुनि के कन्धे पर एक मृत सर्प लपेट दिया था जिसके फलस्वरूप ब्राह्मण बालक ने मुझे शाप दे डाला। किन्तु अब मैं स्वस्थ हूँ। मैं भूख तथा प्यास से तनिक भी विचलित नहीं हूँ।'' इससे सूचित होता है कि यद्यपि भौतिक स्तर पर भूख तथा प्यास बाधक बनती हैं, किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर थकान जैसी कोई वस्तु नहीं होती।

सारा संसार आध्यात्मिक प्यास के कारण कष्ट उठा रहा है। हर जीव ब्रह्म या आध्यात्मिक आत्मा है और उसे अपनी भूख-प्यास बुझाने के लिए आध्यात्मिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु दुर्भाग्य ही कहेंगे कि संसार कृष्णकथा के अमृत से सर्वथा अनजान है। इसलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन दार्शनिकों, धर्मविदों तथा सामान्य लोगों के लिए वरदान तुल्य है। कृष्ण तथा कृष्णकथा में निश्चित रूप में विशेष आकर्षण है। इसीलिए परब्रह्म कृष्ण अर्थात् सर्वाधिक आकर्षक कहलाते हैं।

*अमृत* शब्द चन्द्रमा का भी द्योतक है और *अम्बुज* का अर्थ है ''कमल''। सुहावनी चाँदनी तथा कमल की सुहावनी सुगन्ध मिलकर शुकदेव गोस्वामी के मुख से कृष्णकथा सुनने में आनन्द प्रदान कर रही थी। कहा भी गया है—

*मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा*

*मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।*

*अदान्त गोभिर्विशतां तमिस्रं*

*पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥*

''भौतिकतावादी जीवन के प्रति अत्यन्त आसक्त व्यक्ति अपनी अनियंत्रित इन्द्रियों के कारण नारकीय स्थिति की ओर बढ़ते जाते हैं और एक बार चबाये हुए को पुनः-पुनः चबाते रहते हैं। उनमें न तो किसी के उपदेश से, न अपने आप, न ही इन दोनों के द्वारा कृष्ण के प्रति रुचि जागृत होती है।''

(श्रीमद्भागवत ७.५.३०) सम्प्रति सारा मानव समाज चर्वितचर्वण करने में लगा है (*पुन: पुनश्चर्वितचर्वणानाम्*)। लोग एक शरीर में जन्म लेकर मरने और पुन: दूसरा शरीर धारण कर फिर मृत्यु भोगने के लिए तैयार रहते हैं (*मृत्युसंसार-वर्त्मनि*)। इस जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकने के लिए कृष्णकथा अथवा कृष्णभावनामृत नितान्त आवश्यक है। किन्तु जब तक शुकदेव गोस्वामी जैसे स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से कृष्णकथा नहीं सुनी जाती तब तक सारी भौतिक थकान को दूर करने वाली कृष्णकथा के अमृत का न तो आनन्द लिया जा सकता है न ही आध्यात्मिक अस्तित्व में आनन्दमय जीवन भोगा जा सकता है। जब हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन के बारे में सोचते हैं, तो हम देखते हैं कि जिन्होंने कृष्ण-कथा रूपी अमृत का आस्वादन कर लिया है वे सारी भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर देते हैं, किन्तु जो कृष्ण या कृष्णकथा को नहीं समझते वे कृष्णभावनाभावित जीवन को "मस्तिष्क धुलाई" या "मन-नियंत्रण" मानते हैं। एक ओर जहाँ भक्तगण आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव करते हैं वहीं अभक्तों को यह देखकर हैरानी होती है कि भक्तों ने भौतिक लालसाओं का परित्याग कर दिया है!

सूत उवाच

**एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं**
**वैयासकि: स भगवानथ विष्णुरातम् ।**
**प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं**
**व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधान: ॥ १४॥**

शब्दार्थ

सूत: उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; निशम्य—सुनकर; भृगु-नन्दन—हे भृगुवंशी, शौनक; साधु-वादम्—शुभ प्रश्न; वैयासकि:—व्यासदेव के पुत्र, शुकदेव गोस्वामी; स:—वह; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; अथ—इस प्रकार; विष्णु-रातम्—विष्णु द्वारा सुरक्षित परीक्षित महाराज को; प्रत्यर्च्य—सादर नमस्कार करके; कृष्ण-चरितम्—कृष्णकथा को; कलि-कल्मष-घ्नम्—इस कलियुग के कष्टों को कम करने वाली; व्याहर्तुम्—वर्णन करने के लिए; आरभत—शुरू किया; भागवत-प्रधान:—शुद्ध भक्तों में प्रमुख शुकदेव गोस्वामी ने।

**सूत गोस्वामी ने कहा : हे भृगुपुत्र (शौनक ऋषि), परम आदरणीय व्यासपुत्र भक्त शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के शुभ प्रश्नों को सुनकर राजा को सादर धन्यवाद दिया। फिर उन्होंने कृष्णकथा के विषय में वार्ता प्रारम्भ की जो इस कलियुग के समस्त कष्टों के लिए औषधि है।**

**तात्पर्य :** *कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नम्* पद सूचित करता है कि विशेषकर इस कलियुग के लिए

कृष्ण के कार्यकलाप समस्त कष्टों की रामबाण औषधि हैं। कहा जाता है कि कलियुग के लोग अल्पायु होते हैं और उनमें कृष्णभावनामृत की संस्कृति नहीं पाई जाती। यदि कदाचित् किसी की रुचि आध्यात्मिक संस्कृति में होती भी है, तो उसे विभिन्न प्रकार के अप्रामाणिक स्वामी तथा योगी भ्रान्त करते रहते हैं, जो कृष्णकथा का नाम भी नहीं लेते। इसीलिए अधिकांश लोग अभागे तथा अनेक विपदाओं से ग्रस्त रहते हैं। श्रील व्यासदेव ने इस युग के कष्ट भोग रहे लोगों को छुटकारा दिलाने के लिए ( *कलि कल्मषघ्नम्* ) नारदमुनि के आग्रह पर *श्रीमद्भागवत* लिखा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन *श्रीमद्भागवत* की मनोहारी कथाओं के माध्यम से लोगों को प्रबुद्ध करने में जी-जान से लगा है। *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* का सन्देश सारे विश्व में, सारे क्षेत्रों में, विशेष रूप से प्रगत शिक्षित लोगों के बीच मान्य हो रहा है ।

इस श्लोक में श्रील शुकदेव गोस्वामी को *भागवत-प्रधान* कहा गया है और महाराज परीक्षित को *विष्णुरातम्*। इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है अर्थात् महाराज परीक्षित कृष्ण के महान् भक्त थे और शुकदेव गोस्वामी भी महान् साधु पुरुष तथा कृष्ण के महान् भक्त थे। इन दोनों ने मिलकर कृष्णकथा प्रस्तुत करके कष्ट में फँसी मानवता को बड़ी राहत दी है।

*अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्ति-योगमधोक्षजे।*

*लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्॥*

''जीव के भौतिक कष्ट, जो उसे व्यर्थ लगने वाले हैं, यदि भक्ति के साथ जोड़ दें तो कम किये जा सकते हैं। किन्तु लोग इसे समझ नहीं पाते इसीलिए विद्वान व्यासदेव ने इस वैदिक ग्रंथ *श्रीमद्भागवत* की रचना की जो परम सत्य के विषय में है।'' ( *श्रीमद्भागवत* १.७.६) अधिकांश लोग इस तथ्य से अवगत नहीं होते कि *श्रीमद्भागवत* का सन्देश कलियुग के कष्टों से मानव समाज को छुटकारा दिला सकता है ( *कलिकल्मषघ्नम्* )।

**श्रीशुक उवाच**

**सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ।**

**वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५॥**

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सम्यक्—पूरी तरह; व्यवसिता—स्थिर; बुद्धिः—बुद्धि; तव—आपकी; राज-ऋषि-सत्तम—हे राजर्षियों में श्रेष्ठ; वासुदेव-कथायाम्—वासुदेव कृष्ण विषयक कथाओं के सुनने में; ते—आपका; यत्—क्योंकि; जाता—उत्पन्न; नैष्ठिकी—अनवरत; रतिः—आकर्षण या भावमय भक्ति।.

**श्रील शुकदेव गोस्वामी के कहा : हे राजर्षियों में श्रेष्ठ, चूँकि आप वासुदेव की कथाओं के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हैं अतः निश्चित रूप से आपकी बुद्धि आध्यात्मिक ज्ञान में स्थिर है, जो मानवता का एकमात्र असली लक्ष्य है। चूँकि यह आकर्षण अनवरत रहता है अतएव निश्चितरूप से उत्कृष्ट है।**

**तात्पर्य :** *राजर्षि* अर्थात् प्रमुख प्रशासक के लिए कृष्णकथा अनिवार्य है। *भगवद्गीता* में भी यही कहा गया है (*इमं राजर्षयो विदुः*)। किन्तु दुर्भाग्यवश इस युग में सरकारी शक्ति धीरे-धीरे ऐसे निकृष्ट लोगों के हाथ में जा रही है जिन्हें कोई आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है। इसीलिए समाज का तेजी से पतन हो रहा है। सरकार के प्रशासकों को कृष्णकथा समझनी चाहिए अन्यथा प्रजा कैसे सुखी हो सकती है और किस तरह उसे भौतिकतावादी जीवन के कष्टों से छुटकारा मिल सकता है? जिसका मन कृष्णभावनामृत में स्थिर हो चुका हो, समझिए कि जीवन-मूल्यों के विषय में उसे प्रखर बुद्धि प्राप्त है। महाराज परीक्षित *राजर्षि-सत्तम्* अर्थात् समस्त राजर्षियों में श्रेष्ठ थे और शुकदेव गोस्वामी *मुनि-सत्तम्* थे अर्थात् सारे मुनियों में श्रेष्ठ थे। दोनों ही कृष्णकथा में एक सी रुचि के कारण उच्च पद को प्राप्त थे। अगले श्लोक में वक्ता तथा श्रोता के उच्च पद की बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है। कृष्णकथा इतनी उत्साहदायक है कि महाराज परीक्षित समस्त भौतिक बातों को, यहाँ तक कि खाने-पीने सम्बन्धी निजी सुविधाओं को भी भूल गये। यह इसका प्रमाण है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन को वक्ता तथा श्रोता दोनों को एकसमान दिव्य स्तर पर लाने तथा भगवद्धाम ले जाने के लिए सारे विश्व में किस तरह फैल जाना चाहिए।

**वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ।**
**वक्तारं प्रच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥**

शब्दार्थ

वासुदेव-कथा-प्रश्नः—वासुदेव कृष्ण की लीलाओं तथा गुणों के विषय में प्रश्न; पुरुषान्—पुरुषों को; त्रीन्—तीनों; पुनाति—पवित्र करते हैं; हि—निश्चय ही; वक्तारम्—वक्ता को, यथा शुकदेव गोस्वामी; प्रच्छकम्—जिज्ञासु श्रोता को, यथा महाराज परीक्षित; श्रोतृन्—तथा कथा को सुनने वालों को; तत्-पाद-सलिलम् यथा—जिस तरह भगवान् विष्णु के अँगूठे से निकलने वाले गंगा जल से सम्पूर्ण संसार पवित्र हो जाता है।.

**भगवान् विष्णु के चरणों के अँगूठे से निकलने वाली गंगा तीनों लोकों—ऊपरी, मध्य तथा**

**अधः लोकों—को पवित्र बनाने वाली है। इसी तरह जब कोई व्यक्ति भगवान् वासुदेव कृष्ण की लीलाओं तथा गुणों के विषय में प्रश्न करता है, तो तीन प्रकार के व्यक्ति—वक्ता या उपदेशक, प्रश्नकर्ता तथा सुनने वाले मनुष्य—शुद्ध हो जाते हैं।**

**तात्पर्य :** *श्रीमद्भागवत* में ही (११.३.२१) कहा गया है *तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।* जो लोग जीवन का लक्ष्य जैसा दिव्य विषय जानना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु के पास जाँए। *तस्माद् गुरुं प्रपद्येत।* मनुष्य को चाहिए कि ऐसे गुरु की शरण में जाये जो कृष्ण के विषय में उसे सही जानकारी दे सके। यहाँ पर महाराज परीक्षित ने वासुदेव कथा के विषय में जानने के लिए प्रामाणिक व्यक्ति शुकदेव गोस्वामी की शरण ग्रहण की है। वासुदेव आदि भगवान् हैं जिनके अनन्त आध्यात्मिक कार्यकलाप हैं। *श्रीमद्भागवत* इन कार्यकलापों का संग्रह है और *भगवद्गीता* वासुदेव द्वारा स्वयं दिए गए प्रवचन का संग्रह है। चूँकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन वासुदेव कथा से ओतप्रोत है अतएव जो भी इसमें शामिल होता है, जो भी सुनता है और जो भी प्रचार करता है, वह शुद्ध हो जाएगा।

**भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।**
**आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७॥**

शब्दार्थ

भूमिः—पृथ्वी माता; दृप्त—गर्वित; नृप-व्याज—राजाओं का स्वांग भरते हुए अथवा राज्य में साक्षात् परम शक्ति; दैत्य—असुरों की; अनीक—सैनिकों की सेना; शत-अयुतैः—सैकड़ों हजारों में, असंख्य; आक्रान्ता—बोझिल होकर; भूरि-भारेण—व्यर्थ की सेना के बोझ से; ब्रह्माणम्—ब्रह्मा के पास; शरणम्—शरण खोजने; ययौ—गयी।.

**एक बार माता पृथ्वी राजाओं के वेश में गर्वित लाखों असुरों की सेना से बोझिल हो उठी तो वह इससे छुटकारा पाने के लिए ब्रह्मा के पास पहुँची।**

**तात्पर्य :** जब भी संसार अनावश्यक सैनिक व्यवस्थाओं से बोझिल हो उठता है और जब भी विविध आसुरी राजाओं का शासन होता है, तो इस बोझ के कारण भगवान् को प्रकट होना पड़ता है। *भगवद्गीता* (४.७) में भगवान् कहते हैं :

*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।*

*अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥*

“हे भरतवंशी! जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का प्राबल्य होता है तब-तब मैं

अवतीर्ण होता हूँ।'' जब इस धरा के निवासी नास्तिक तथा ईश्वरविहीन हो जाते हैं, तो वे कूकरों-सूकरों की स्थिति को प्राप्त होते हैं और उनका एक ही कार्य रह जाता है, वह है परस्पर भूँकना। यही *धर्मस्य ग्लानि* अर्थात् जीवन लक्ष्य से विचलन है। मनुष्य जीवन तो कृष्णभावनामृत में सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने के निमित्त है, किन्तु जब लोग ईश्वरविहीन हो जाते हैं और राज्याध्यक्ष या राजा अपनी सैन्यशक्ति पर अनावश्यक गर्व करने लगते हैं, तो उनका कार्य युद्ध करना तथा अपने विभिन्न राज्यों की सैन्य शक्ति को बढ़ाना रह जाता है। इसीलिए आजकल ऐसा प्रतीत होता है कि हर राज्य तृतीय विश्व-युद्ध की तैयारी के लिए परमाणु हथियार बनाने में व्यस्त है। ऐसी तैयारी व्यर्थ है और इससे राज्य के प्रधानों का मिथ्या अहंकार प्रतिबिम्बित होता है। प्रधान शासक का असली कार्य तो जीवन के विभिन्न विभागों में सामान्य लोगों को कृष्णभावनामृत का प्रशिक्षण देकर उन्हें सुखी बनाना है। *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:* ( *भगवद्गीता* ४.१३ )। नेता को चाहिए कि लोगों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का प्रशिक्षण दे और उन्हें अनेक वृत्तिपरक कार्यों में लगाये जिससे वे कृष्णभावनामृत की दिशा में प्रगति कर सकें। किन्तु हो यह रहा है कि चोर तथा उचक्के रक्षक के वेश में मतदान-पद्धति की व्यवस्था करते हैं और प्रजातंत्र के नाम पर वे येन-केन प्रकारेण सत्ता में आकर प्रजा का शोषण करते हैं। यहाँ तक कि बहुत पुराने जमाने में असुरगण, जो कि ईशभावनामृत से विहीन थे, राज्य के प्रधान बन गए थे और अब फिर से वैसा ही हो रहा है। संसार के विभिन्न राज्य सैन्यशक्ति को व्यवस्थित करने में लगे हुए हैं। कभी-कभी तो वे इस कार्य के लिए सरकार की आय का ६५ प्रतिशत खर्च कर देते हैं। किन्तु लोगों की कठिन कमाई को इस तरह क्यों फूँका जाए? वर्तमान विश्व परिस्थिति को देखते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन के रूप में कृष्ण अवतरित हुए हैं। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के बिना विश्व में शान्ति और सुख स्थापित नहीं हो सकता।

**गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभो: ।**
**उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं समवोचत ॥ १८ ॥**

शब्दार्थ

गौ:—गाय; भूत्वा—बनकर; अश्रु-मुखी—आँखों में आँसू भरकर; खिन्ना—अत्यन्त दुखी; क्रन्दन्ती—रोती हुई; करुणम्—बेचारी; विभो:—ब्रह्मा के; उपस्थिता—प्रकट हुई; अन्तिके—समक्ष; तस्मै—उनसे ( ब्रह्मा से ); व्यसनम्—अपनी विपदा; समवोचत—निवेदन किया।

**माता पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया। वह अत्यन्त दुखियारी, अपनी आँखों में आँसू भर**

**कर भगवान् ब्रह्मा के समक्ष प्रकट हुई और उसने उनसे अपनी विपदा कह सुनायी।**

**ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ।**
**जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥**

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्माजी; तत्-उपधार्य—हर बात को ठीक से समझ कर; अथ—तत्पश्चात्; सह—साथ; देवैः—देवताओं के; तया सह—माता पृथ्वी के साथ; जगाम—निकट गए; स-त्रि-नयनः—तीन नेत्रों वाले शिवजी के साथ; तीरम्—तट पर; क्षीर-पयः-निधेः—क्षीर सागर के।

**माता पृथ्वी की विपदा सुनकर ब्रह्माजी, माता पृथ्वी तथा शिवजी एवं अन्य समस्त देवताओं के साथ क्षीरसागर के तट पर जा पहुँचे।**

**तात्पर्य :** जब ब्रह्माजी पृथ्वी की संकटमय स्थिति को समझ गये तो सबसे पहले वे इस ब्रह्माण्ड के विविध कार्यों का भार सँभालने वाले भगवान् इन्द्र तथा संहार के लिए उत्तरदायी शिवजी के पास गये। सृजन और संहार कार्य भगवान् के आदेशानुसार निरन्तर चलता रहता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* जो लोग ईश्वर के नियमों का पालन करने वाले हैं उनकी रक्षा विभिन्न सेवकों तथा देवताओं द्वारा की जाती है, किन्तु जो अवांछित हैं, शिवजी उनका संहार कर देते हैं। सर्वप्रथम ब्रह्माजी शिवजी समेत सारे देवताओं से मिले। तब माता पृथ्वी को साथ लेकर वे क्षीर सागर के किनारे गये जहाँ विष्णु भगवान् श्वेतद्वीप में शयन करते हैं।

**तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।**
**पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥**

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ ( क्षीरसागर के तट पर ); गत्वा—जाकर; जगन्नाथम्—समग्र ब्रह्माण्ड के स्वामी को; देव-देवम्—सारे देवताओं के भी परम ईश्वर को; वृषाकपिम्—परम पुरुष विष्णु को जो हर एक का पालन करने वाले तथा सबके कष्टों को दूर करने वाले हैं; पुरुषम्—परम पुरुष को; पुरुष-सूक्तेन—पुरुषसूक्त नामक वैदिक मंत्र से; उपतस्थे—पूजा किया; समाहितः—पूर्ण मनोयोग से।

**क्षीर सागर के तट पर पहुँच कर सारे देवताओं ने समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी, समस्त देवताओं के परम ईश तथा हर एक का पालन करने वाले और उनके दुखों को दूर करने वाले भगवान् विष्णु की पूजा की। उन्होंने बड़े ही मनोयोग से पुरुषसूक्त नामक वैदिक मंत्रों के पाठ द्वारा क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु की पूजा की।**

**तात्पर्य :** सारे देवता यथा ब्रह्माजी, शिवजी, देवराज इन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के

अधीन हैं। देवताओं के अतिरिक्त मानव समाज में भी अनेक प्रभावशाली व्यक्ति हैं, जो विविध व्यापारों या प्रतिष्ठानों का अधीक्षण करते हैं। किन्तु भगवान् विष्णु तो देवताओं के भी ईश्वर ( *परमेश्वर* ) हैं। वे *परम पुरुष* परमात्मा हैं। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.१) में पुष्टि हुई है—*ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः*—"गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर सत्, चित् तथा आनन्द से युक्त है।" न तो कोई भगवान् के तुल्य है, न ही उनसे बढ़कर है इसीलिए यहाँ पर *जगन्नाथ, देव-देव, वृषाकपि* तथा *पुरुष* जैसे शब्दों से उनका वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु की श्रेष्ठता की पुष्टि *भगवद्गीता* (१०.१२) में अर्जुन के निम्नलिखित कथन से भी होती है—

*परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।*

*पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥*

"आप परम ब्रह्म, परम धाम, शुद्धकर्ता, परम सत्य तथा नित्य दैवी पुरुष हैं। आप आदि भगवान् हैं, दिव्य और शाश्वत हैं और अजन्मा हैं तथा सर्वव्यापक सौन्दर्य हैं।" कृष्ण *आदि पुरुष* ( *गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि* ) हैं। विष्णु भगवान् कृष्ण के स्वांश हैं और सारे *विष्णुतत्त्व परमेश्वर* तथा *देवदेव* हैं।

**गिरं समाधौ गगने समीरितां**
**निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ।**
**गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-**
**र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥**

शब्दार्थ

गिरम्—शब्दों की ध्वनि; समाधौ—समाधि में; गगने—आकाश में; समीरिताम्—ध्वनित; निशम्य—सुनकर; वेधाः—ब्रह्मा ने; त्रिदशान्—देवताओं को; उवाच—कहा; ह—ओह; गाम्—आदेश; पौरुषीम्—परम पुरुष से प्राप्त; मे—मुझको; शृणुत—सुनिए; अमराः—हे देवताओ; पुनः—फिर; विधीयताम्—सम्पन्न करो; आशु—तुरन्त; तथा एव—उसी तरह; मा—मत; चिरम्—विलम्ब।

**ब्रह्माजी जब समाधि में थे, भगवान् विष्णु के शब्दों को आकाश में ध्वनित होते सुना। तब उन्होंने देवताओं से कहा, "अरे देवताओ! मुझसे परम पुरुष क्षीरोदकशायी विष्णु का आदेश सुनो और बिना देर लगाए उसे ध्यानपूर्वक पूरा करो।"**

**तात्पर्य :** ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् के शब्दों को सक्षम व्यक्ति समाधि में सुन सकते हैं। आधुनिक विज्ञान ने हमें टेलीफोन प्रदान किया है, जिसकी सहायता से हम सुदूर स्थान की ध्वनियाँ

सुन सकते हैं। इसी तरह, यद्यपि अन्य लोग भगवान् विष्णु के शब्दों को नहीं सुन सकते, किन्तु ब्रह्माजी अपने अभ्यंतर में भगवान् के शब्दों को सुन सकते हैं। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में ही (१.१.१) *तेने ब्रह्महृदा य आदि कवये* के द्वारा हुई है। *आदि कवि* ब्रह्माजी हैं। ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि में अपने हृदय के माध्यम से (*हृदा*) भगवान् विष्णु से वैदिक ज्ञान का आदेश प्राप्त किया। यहाँ उसी सिद्धान्त की पुष्टि हुई है। ब्रह्मा ने समाधिस्थ अवस्था में क्षीरोदकशायी विष्णु के शब्द सुने और भगवान् के सन्देश को देवताओं तक पहुँचाया। इसी तरह ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में अपने हृदय के भीतर भगवान् से वैदिक ज्ञान प्राप्त किया। दोनों ही अवसरों पर ब्रह्माजी तक सन्देश ले जाने में एक ही विधि प्रयुक्त हुई। दूसरे शब्दों में, यद्यपि भगवान् विष्णु ब्रह्माजी को भी नहीं दिख रहे थे, किन्तु वे अपने हृदय के माध्यम से भगवान् विष्णु के शब्द सुन सके। ब्रह्माजी तक को नहीं दिखते फिर भी वे इस धरा पर अवतरित होते हैं और सामान्य जनता को दृष्टिगोचर होते हैं। यह उनकी अहैतुकी कृपावश ही होता है, किन्तु मूर्ख तथा अभक्त यही सोचते हैं कि कृष्ण सामान्य ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। चूँकि वे भगवान् को अपने ही जैसा सामान्य व्यक्ति सोचते हैं इसलिए उन्हें *मूढ* कहा गया है (*अवजानन्ति मां मूढा:*)। ऐसे असुरगण जो *भगवद्गीता* के उपदेशों को नहीं समझ पाते और जो इसीलिए उन उपदेशों की गलत व्याख्या करते हैं, वे भगवान् की अहैतुकी कृपा की उपेक्षा करते हैं।

**पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो**
**भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।**
**स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः**
**स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥**

शब्दार्थ

पुरा—इससे भी पहले; एव—निस्सन्देह; पुंसा—भगवान् द्वारा; अवधृतः—ज्ञात था; धरा-ज्वरः—पृथ्वी पर संकट; भवद्भिः—आपके; अंशैः—अंशों द्वारा; यदुषु—राजा यदु के वंश में; उपजन्यताम्—जन्म लेकर; सः—वह (भगवान्); यावत्—जब तक; उर्व्याः—पृथ्वी का; भरम्—भार; ईश्वर-ईश्वरः—ईश्वरों के ईश्वर; स्व-काल-शक्त्या—अपनी ही काल शक्ति द्वारा; क्षपयन्—घटाने के लिए; चरेत्—गति करें; भुवि—पृथ्वी की सतह पर।

**भगवान् ब्रह्माजी ने देवताओं को बतलाया: हमारे द्वारा याचना करने के पूर्व ही भगवान् पृथ्वी के संकट से अवगत हो चुके थे। फलतः जब तक भगवान् अपनी काल शक्ति के द्वारा पृथ्वी का भार कम करने के लिए पृथ्वी पर गतिशील रहें तब तक तुम सभी देवताओं को यदुओं के परिवार में उनके पुत्रों तथा पौत्रों के अंश के रूप में अवतीर्ण होना होगा।**

**तात्पर्य :** *ब्रह्म-संहिता* (५.३९) में कहा गया है—

*रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्*

*नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु।*

*कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो*

*गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥*

''मैं उन गोविन्द की पूजा करता हूँ जो राम, नृसिंह अवतारों तथा अन्य उप-अवतारों के रूप में सदैव स्थित रहते हैं, किन्तु जो आदि भगवान् हैं और कृष्ण कहलाते हैं और जो स्वयं भी अवतरित होते हैं।''

*श्रीमद्भागवत* के इस श्लोक में *पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरः* शब्द आये हैं। *पुंसा* कृष्ण का द्योतक है, जो पहले से अवगत थे कि सारा संसार असुरों की बाढ़ से किस तरह पीड़ित था। भगवान् की परम शक्ति का उल्लेख किये बिना असुरगण अपने आपको स्वतंत्र राजा तथा राष्ट्रपति बतलाते हैं और इस तरह अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाकर उत्पात मचाते हैं। जब ऐसे उत्पात अत्यधिक मुखर हो उठते हैं, तो कृष्ण प्रकट होते हैं। इस समय भी विश्वभर में अनेक आसुरी राज्य अनेक प्रकार से अपनी-अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा रहे हैं जिससे सारी स्थिति पीड़ाजनक हो उठी है। इसीलिए कृष्ण अपने नाम से हरे कृष्ण आन्दोलन में प्रकट हुए हैं, जो निश्चय ही विश्व के भार को कम करेगा। दार्शनिकों, धर्मज्ञों तथा सामान्य जनों को गम्भीरतापूर्वक इस आन्दोलन में भाग लेना चाहिए क्योंकि मानवनिर्मित योजनाओं तथा युक्तियों से पृथ्वी पर शान्ति लाने में सहायक नहीं हो सकती। हरे कृष्ण की दिव्य ध्वनि पुरुष कृष्ण से भिन्न नहीं है।

*नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।*

*पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान् नामनामिनोः॥*

(*पद्म पुराण*)

हरे कृष्ण ध्वनि तथा पुरुष कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है।

**वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ।**

**जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥**

शब्दार्थ

वसुदेव-गृहे—वसुदेव ( कृष्ण के पिता ) के घर में; साक्षात्—साकार रूप में; भगवान्—पूर्ण शक्तिमान भगवान्; पुरुषः—आदि पुरुष; परः—दिव्य; जनिष्यते—उत्पन्न होगा; तत्-प्रिय-अर्थम्—उसकी तुष्टि के लिए; सम्भवन्तु—जन्म लेना होगा; सुर-स्त्रियः—देवताओं की स्त्रियों को।.

**सर्वशक्तिमान भगवान् कृष्ण वसुदेव के पुत्र रूप में स्वयं प्रकट होंगे। अतः देवताओं की सारी स्त्रियों को भी उन्हें प्रसन्न करने के लिए प्रकट होना चाहिए।**

**तात्पर्य :** *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् कहते हैं—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति*—भौतिक शरीर त्यागने के बाद भगवद्भक्त भगवान् के पास वापस लौट आता है। इसका अर्थ यह होता है कि भक्त पहले उस ब्रह्माण्ड विशेष में भेजा जाता है जहाँ भगवान् उस समय अपनी लीलाएँ करते होते हैं। ब्रह्माण्ड असंख्य हैं और हर क्षण भगवान् इनमें से किसी एक में प्रकट होते रहते हैं। इसीलिए उनकी लीलाएँ *नित्यलीला* कहलाती हैं। शिशुओं के रूप में देवकी के घर भगवान् का प्राकटय निरन्तर एक के बाद दूसरे ब्रह्माण्ड में होता रहता है। इसलिए भक्त को सर्वप्रथम वहाँ भेजा जाता है जहाँ उस समय भगवान् की अपनी लीलाएँ चल रही होती हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है कि यदि भक्त की भक्ति पूरी नहीं भी हो पाती तो भी वह स्वर्ग का सुख भोगता है जहाँ अत्यन्त पवित्र लोग निवास करते हैं और तब वह किसी *शुचि* या *श्रीमान्* अर्थात् पवित्र ब्राह्मण या धनी वैश्य के घर में जन्म लेता है। ( *शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते* )। इस तरह शुद्ध भक्त यदि भक्ति को पूरा करने में असमर्थ रहता है, तो भी वह स्वर्ग में भेज दिया जाता है जहाँ पुण्यात्मा रहते हैं। यदि उसकी भक्ति पूरी हो जाती है, तो वहाँ से ऐसा भक्त ऐसे स्थान को भेज दिया जाता है जहाँ भगवान् की लीलाएँ चल रही होती हैं। यहाँ पर *सम्भवन्तु सुरस्त्रियः* कहा गया है। *सुरस्त्री* अर्थात् स्वर्ग की स्त्रियों को वृन्दावन में यदुवंशियों के यहाँ जन्म लेकर कृष्ण की लीलाओं को समृद्ध बनाने का आदेश दिया गया। ये *सुरस्त्रियाँ* कृष्ण के साथ रहने का और अधिक प्रशिक्षण पाने के बाद आदि गोलोक वृन्दावन भेज दी जाएँगी। इस जगत में कृष्ण की लीलाओं के समय सुरस्त्रियों को विभिन्न परिवारों में विभिन्न प्रकारों से कृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिए प्रकट होना था जिससे नित्य गोलोक वृन्दावन भेजे जाने के पूर्व वे पूरी तरह प्रशिक्षित हो जाँय। वे द्वारकापुरी, मथुरापुरी या वृन्दावन में कृष्ण की संगति से निश्चय ही भगवद्धाम वापस जाएँगी। सुरस्त्रियों में अनेक भक्तिनें हैं यथा कृष्ण के उपेन्द्र अवतार की माता। ऐसी ही अनुरक्त

स्त्रियों का इस प्रसंग में बुलाया गया था।

**वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ।**
**अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४॥**

शब्दार्थ

वासुदेव-कला अनन्तः—भगवान् कृष्ण का अंश जो अनन्तदेव या संकर्षण अनन्त के नाम से प्रसिद्ध हैं, भगवान् का सर्वव्यापक अवतार; सहस्र-वदनः—हजार फनों वाला; स्वराट्—पूर्णतया स्वतंत्र; अग्रतः—इसके पूर्व; भविता—प्रकट होगा; देवः—भगवान्; हरेः—कृष्ण का; प्रिय-चिकीर्षया—आनन्द के लिए कार्य करने की इच्छा से।.

**कृष्ण का सबसे अग्रणी स्वरूप संकर्षण है, जो अनन्त कहलाता है। वह इस भौतिक जगत में सारे अवतारों का उद्गम है। भगवान् कृष्ण के प्राकटय के पूर्व यह आदि संकर्षण कृष्ण को उनकी दिव्य लीलाओं में प्रसन्न करने के लिए बलदेव के रूप में प्रकट होगा।**

**तात्पर्य :** श्री बलदेव साक्षात् भगवान् हैं। वे श्रेष्ठता में ईश्वर के ही समान हैं, फिर भी जहाँ कहीं कृष्ण प्रकट होते हैं, श्रीबलदेव उनके भाई के रूप में, कभी बड़े भाई के रूप में तो कभी छोटे भाई के रूप में प्रकट होते हैं। जब कृष्ण अवतीर्ण होते हैं, तो उनके सारे स्वांश तथा अन्य अवतार भी उन्हीं के साथ प्रकट होते हैं। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* में इसकी विस्तृत रूप में व्याख्या की गई है। इस बार बलदेव कृष्ण से पहले उनके बड़े भाई के रूप में प्रकट होंगे।

**विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् ।**
**आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ॥ २५॥**

शब्दार्थ

विष्णोः माया—भगवान् विष्णु की शक्ति; भगवती—भगवान् के ही समकक्ष अतएव भगवती नाम से जानी जाने वाली; यया—जिससे; सम्मोहितम्—मोहित; जगत्—सारे जगत, भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों; आदिष्टा—आदेश पाकर; प्रभुणा—स्वामी के द्वारा; अंशेन—अपने विभिन्न शक्तिशाली कारकों के साथ; कार्य-अर्थे—पूरा काम करने के लिए; सम्भविष्यति—जन्म लेगी।.

**विष्णु माया कहलाने वाली भगवान् की शक्ति जो भगवान् के ही समान है, भगवान् कृष्ण के साथ-साथ ही प्रकट होगी। यह शक्ति विभिन्न पदों पर कार्य करती हुई भौतिक तथा आध्यात्मिक सभी जगतों को मोहने वाली है। वह अपने स्वामी के आग्रह पर भगवान् का कार्य सम्पन्न करने के लिए अपनी विविध शक्तियों सहित प्रकट होगी।**

**तात्पर्य :** *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते* (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८)। वेदों में कहा गया है कि भगवान् की शक्तियाँ विविध नामों से पुकारी जाती हैं यथा *योगमाया* तथा *महामाया*। किन्तु अन्ततोगत्वा

भगवान् की शक्ति एक है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि विद्युत् शक्ति एक है यद्यपि वह शीतल करने तथा गरम करने दोनों का ही कार्य करती है। भगवान् की शक्ति आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों जगतों में कार्य करती है। आध्यात्मिक जगत में यह *योगमाया* के रूप में कार्य करती है, तो भौतिक जगत में वही *महामाया* के रूप में कार्य करती है उसी तरह जिस तरह विद्युत् शक्ति हीटर तथा कूलर दोनों में काम करती है। भौतिक जगत में यह शक्ति महामाया के रूप में कार्य करती हुई बद्धजीवों को भक्ति से अधिकाधिक वंचित कराने वाली है। कहा गया है *यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।* बद्धजीव भौतिक जगत में अपने को तीन गुणों (*त्रिगुण*) की उपज मानता है। यह देहात्मबुद्धि है। हर व्यक्ति भौतिक शक्ति के तीन गुणों से अपने को सम्बद्ध करने के ही कारण अपने को अपना शरीर मानता है। कोई अपने को ब्राह्मण तो कोई अपने को क्षत्रिय मानता है और कोई वैश्य या शूद्र। वास्तव में न तो कोई ब्राह्मण है, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र। वह तो भगवान् का अंश है (*ममैवांशः*) किन्तु भौतिक शक्ति महामाया से प्रच्छन्न होने के कारण वह भिन्न-भिन्न ढंगों से अपनी पहचान करता है। किन्तु जब बद्धजीव मुक्त हो जाता है, तो वह अपने को कृष्ण का नित्य दास मानता है। *जीवेर 'स्वरूप' हयकृष्णेर 'नित्य-दास'।* जब वह इस पद को प्राप्त कर लेता है, तो वही शक्ति योगमाया उसे शुद्ध बनने और अपनी शक्ति भगवान् की सेवा में लगाने में अधिकाधिक सहायक बनती है।

जीव चाहे बद्ध हो या मुक्त, भगवान् प्रत्येक अवस्था में सर्वोपरि हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.१०) में कहा गया है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—भगवान् के ही आदेश से महामाया बद्धजीव पर अपना प्रभाव दिखलाती है।

*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः।*
*अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥*

''मोहग्रस्त जीव प्रकृति के तीनों गुणों के वशीभूत होकर अपने को उन कार्यों का कर्ता मान बैठता है, जो वास्तव में प्रकृति द्वारा सम्पन्न होते हैं।'' (*भगवद्गीता* ३.२७) बद्धजीव में किसी को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं, किन्तु मनुष्य मोहग्रस्त होने तथा महामाया के वशीभूत होने से मूर्खतावश अपने को स्वतंत्र मान बैठता है (*अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते*)। किन्तु जब भक्ति करने के कारण बद्धजीव मुक्त बनता है, तो उसे विभिन्न रसों में यथा दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस तथा माधुर्य-रस में

भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध का आस्वादन करने का अधिकाधिक अवसर प्राप्त होता है।

इस तरह से भगवान् की शक्ति *विष्णुमाया* के दो स्वरूप हैं—*आवरणिका* तथा *उन्मुख*। जब भगवान् अवतीर्ण हुए तो उनकी शक्ति उनके साथ आई और उसने अनेक प्रकार से कार्य किये। उसने यशोदा, देवकी तथा भगवान् के अन्य घनिष्ठ सम्बन्धियों के साथ *योगमाया* के रूप में कार्य किया, किन्तु कंस, शाल्व तथा अन्य असुरों के साथ उसने भिन्न रूप से कार्य किया। भगवान् कृष्ण के आदेश से उनकी शक्ति योगमाया उनके साथ आई और उसने देश तथा काल के अनुसार विविध कार्यकलाप प्रदर्शित किये—*कार्यार्थे सम्भविष्यति।* योगमाया ने भगवान् के द्वारा इच्छित विविध प्रयोजनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकारों से कार्य किया। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.१३) में पुष्टि हुई है—*महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिता:।* भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया शरणागत महात्मा-जन योगमाया द्वारा निर्देशित होते हैं जबकि भक्ति से रहित दुरात्मा-जन महामाया द्वारा निर्देशित होते हैं।

**श्रीशुक उवाच**
**इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभु: ।**
**आश्वास्य च महीं गीर्भि: स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥**

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आदिश्य—सूचना देकर; अमर-गणान्—देवताओं को; प्रजापति-पति:—प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी; विभु:—सर्वशक्तिमान; आश्वास्य—आश्वासन देकर; च—भी; महीम्—माता पृथ्वी को; गीर्भि:—मधुर शब्दों से; स्व-धाम—अपने धाम, ब्रह्मलोक; परमम्—सर्वश्रेष्ठ (ब्रह्माण्ड के भीतर); ययौ—लौट गये।.

**शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस तरह देवताओं को सलाह देकर तथा माता पृथ्वी को आश्वस्त करते हुए अत्यन्त शक्तिशाली ब्रह्माजी, जो समस्त प्रजापतियों के स्वामी होने से प्रजापति-पति कहलाते हैं, अपने धाम ब्रह्मलोक लौट गये।**

**शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् ।**
**माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥**

शब्दार्थ

शूरसेन:—राजा शूरसेन; यदु-पति:—यदुवंश का मुखिया; मथुराम्—मथुरा नामक स्थान में; आवसन्—जाकर रहने लगा; पुरीम्—नगरी में; माथुरान्—माथुर जिले के नाम से विख्यात स्थान में; शूरसेनान् च—तथा शूरसेन नामक स्थान में; विषयान्—ऐसे राज्यों का; बुभुजे—भोग किया; पुरा—प्राचीन काल में।.

**प्राचीन काल में यदुवंश का मुखिया शूरसेन मथुरा नामक नगरी में रहने के लिए गया। वहाँ**

**उसने माथुर तथा शूरसेन नामक स्थानों का भोग किया।**

**राजधानी ततः साभूत्सर्वयादवभूभुजाम् ।**
**मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥**

शब्दार्थ

राजधानी—राजधानी; ततः—उस समय से; सा—वह ( मथुरा नामक नगरी तथा देश ); अभूत्—बन गया; सर्व-यादव-भूभुजाम्—यदुवंश में होने वाले सारे राजाओं की; मथुरा—मथुरा नामक स्थान; भगवान्—भगवान्; यत्र—जहाँ; नित्यम्—शाश्वत रूप से; सन्निहितः—घनिष्टतापूर्वक सम्बद्ध, नित्यवास करते हुए; हरिः—भगवान्।

**उस समय से मथुरा नगरी सारे यदुवंशी राजाओं की राजधानी बनी रही। मथुरा नगरी तथा मथुरा जनपद कृष्ण से घनिष्टतापूर्वक जुड़े हैं क्योंकि वहाँ कृष्ण का नित्य वास है।**

**तात्पर्य :** ऐसा ज्ञात होता है कि मथुरा नगरी भगवान् कृष्ण का नित्य धाम है। यह कोई सामान्य भौतिक नगरी नहीं क्योंकि यह सदा से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से जुड़ी हुई है। वृन्दावन मथुरा की सीमा के अन्तर्गत है और आज भी विद्यमान है। चूँकि मथुरा तथा वृन्दावन का कृष्ण से शाश्वत सम्बन्ध है इसलिए कहा जाता है कि कृष्ण वृन्दावन को कभी नहीं छोड़ते ( *वृन्दावनं परित्यज्य पदमेकं न गच्छति* )। सम्प्रति मथुरा जिले के अन्तर्गत वृन्दावन दिव्य स्थान के रूप में मान्य है और जो भी वहाँ जाता है, शुद्ध बन जाता है। नवद्वीप धाम भी व्रजभूमि से घनिष्टतापूर्वक सम्बद्ध है। इसीलिए श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—

*श्रीगौडमण्डल भूमि, येबा जाने चिन्तामणि*
*ताऽर हय व्रजभूमे वास*

"व्रजभूमि" द्योतक है मथुरा-वृन्दावन का और गौड़ मण्डल भूमि के अन्तर्गत नवद्वीप आता है। ये दोनों स्थान अभिन्न हैं। इसलिए नवद्वीप धाम का कोई भी वासी जो कृष्ण तथा चैतन्य महाप्रभु को एक रूप में जानता है, वह व्रजभूमि मथुरा-वृन्दावन में वास करता है। महाप्रभु ने बद्धजीवों को मथुरा, वृन्दावन तथा नवद्वीप में वास करना और भगवान् से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना आसान बना दिया है। इन स्थानों में रहने से ही मनुष्य भगवान् के सम्पर्क में आ सकता है। ऐसे अनेक भक्त हैं, जो वृन्दावन तथा मथुरा छोड़कर अन्यत्र न जाने का व्रत लेते हैं। यह अच्छी बात है, किन्तु यदि कोई व्यक्ति भगवान् की सेवा करने के लिए वृन्दावन, मथुरा या नवद्वीप धाम को छोड़ता है, तो उसका सम्बन्ध भगवान् से टूटता नहीं। जो हो, हमें चाहिए कि मथुरा-वृन्दावन तथा नवद्वीप धाम के दिव्य

महत्त्व को समझना चाहिए। जो व्यक्ति इन स्थानों में रहकर भक्ति करता है, वह शरीर त्यागने के बाद निश्चित रूप से भगवद्धाम जाता है। इस प्रकार *मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः*—ये वचन विशेष महत्त्व रखते हैं। भक्त को चाहिए कि इस उपदेश का पूरा-पूरा लाभ उठाए। जब भी भगवान् अवतीर्ण होते हैं, तो मथुरा में ही अवतीर्ण होते हैं क्योंकि इस स्थान से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए मथुरा तथा वृन्दावन इस धराधाम में स्थित होते हुए भी भगवान् के दिव्य धाम हैं।

**तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ।**
**देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥**

शब्दार्थ

तस्याम्—उस मथुरा नामक स्थान में; तु—निस्सन्देह; कर्हिचित्—कुछ समय बीता; शौरिः—शूर का वंशज, देवता; वसुदेवः—वसुदेव रूप में प्रकट; कृत-उद्वहः—विवाह करने के बाद; देवक्या—देवकी से; सूर्यया—अपनी नवविवाहिता पत्नी के; सार्धम्—साथ; प्रयाणे—घर लौटने के लिए; रथम्—रथ पर; आरुहत्—चढ़ा।

**कुछ समय पूर्व देववंश ( या शूरवंश ) के वसुदेव ने देवकी से विवाह किया। विवाह के बाद वह अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ घर लौटने के लिए अपने रथ पर आरूढ़ हुआ।**

**उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।**
**रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥**

शब्दार्थ

उग्रसेन-सुतः—उग्रसेन का बेटा; कंसः—कंस ने; स्वसुः—अपनी बहिन देवकी के; प्रिय-चिकीर्षया—विवाह के अवसर पर उसे प्रसन्न करने के लिए; रश्मीन्—लगामों को; हयानाम्—घोड़ों की; जग्राह—पकड़ लिया; रौक्मैः—सोने की बनी; रथ-शतैः—सैकड़ों रथों से; वृतः—घिरा हुआ।

**राजा उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपनी बहन देवकी को उसके विवाह के अवसर पर प्रसन्न करने की दृष्टि से घोड़ों की लगामें अपने हाथ में थाम लीं और स्वयं रथचालक ( सारथी ) बन गया। वह सैकड़ों सुनहरे रथों से घिरा था।**

**चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ।**
**अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥**
**दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलङ्कृते ।**
**दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥**

शब्दार्थ

चतुः-शतम्—चार सौ; पारिबर्हम्—दहेज; गजानाम्—हाथियों के; हेम-मालिनाम्—सोने के हारों से सजे; अश्वानाम्—घोड़ों के; अयुतम्—दस हजार; सार्धम्—साथ में; रथानाम्—रथों के; च—तथा; त्रि-षट्-शतम्—छह सौ का तिगुना, अठारह सौ;

दासीनाम्—दासियों के; सु-कुमारीणाम्—अत्यन्त जवान तथा सुन्दर अविवाहित लड़कियाँ; द्वे—दो; शते—सौ; समलङ्कृते—गहनों से सज्जित; दुहित्रे—अपनी पुत्री को; देवकः—राजा देवक; प्रादात्—भेंट स्वरूप दिया; याने—जाते समय; दुहितृ-वत्सलः—अपनी पुत्री देवकी को अत्यधिक चाहने वाला।

**देवकी का पिता राजा देवक अपनी पुत्री को अत्यधिक स्नेह था। अतएव जब देवकी तथा उसका पति घर से विदा होने लगे तो उसने दहेज में सोने के हारों से सुसज्जित चार सौ हाथी दिए। साथ ही दस हजार घोड़े, अठारह हजार रथ तथा दो सौ अत्यन्त सुन्दर तथा गहनों से अच्छी तरह अलंकृत युवा दासियाँ दीं।**

**तात्पर्य :** वैदिक सभ्यता में अपनी पुत्री को दहेज देने की प्रथा दीर्घकाल से चली आ रही है। आज भी, उसी प्रथा का पालन करते हुए धनवान पिता अपनी पुत्री को भरपूर दहेज देता है। चूँकि पुत्री को पिता की सम्पत्ति में अधिकार नहीं मिलता इसलिए वत्सल पिता अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर यथाशक्ति दहेज देता है। इसलिए वैदिक प्रथा के अनुसार दहेज अवैध नहीं है। किन्तु देवक ने देवकी को जो दहेज दिया वह सामान्य नहीं था। चूँकि देवक राजा था अतएव अपने राजसी-पद के अनुसार उसने उपयुक्त दहेज दिया। यहाँ तक कि सामान्य व्यक्ति, विशेष रूप से कुलीन ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य से आशा की जाती है कि वह दिल खोल कर यथेष्ठ दहेज दे। विवाह के तुरन्त बाद पुत्री अपने ससुराल जाती है और यह भी प्रथा है कि अपनी बहन के प्रति प्रेभभाव दर्शाने के लिए दुलहिन का भाई उसके तथा बहनोई के साथ-साथ जाय। कंस इसी प्रथा का पालन कर रहा था। *वर्णाश्रम धर्म* समाज में, जिसे आज गलती से हिन्दू समाज कहा जाता है, ये पुराने रीति-रिवाज पाए जाते हैं। इन पुराने रीति-रिवाजों का यहाँ पर सुन्दर ढंग से वर्णन हुआ है।

**शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ।**
**प्रयाणप्रक्रमे तात वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥**

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; तूर्य—तुरही; मृदङ्गाः—मृदंग; च—भी; नेदुः—बजने लगे; दुन्दुभयः—नगाड़े; समम्—एकसाथ; प्रयाण-प्रक्रमे—विदाई के समय; तात—हे पुत्र; वर-वध्वोः—दूल्हा तथा दुल्हन की; सु-मङ्गलम्—शुभ विदाई के लिए।

**हे प्रिय पुत्र महाराज परीक्षित, जब दूल्हा तथा दुल्हन विदा होने लगे तो उनकी शुभ विदाई पर शंख, तुरही, मृदंग तथा नगाड़े एकसाथ बजने लगे।**

**पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ।**

**अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४॥**

शब्दार्थ

पथि—रास्ते में; प्रग्रहिणम्—घोड़ों की लगाम थामे हुए; कंसम्—कंस को; आभाष्य—सम्बोधित करते हुए; आह—कहा; अ-शरीर-वाक्—अदृश्य शरीर से आने वाली आवाज ने; अस्याः—इस ( देवकी ) का; त्वाम्—तुमको; अष्टमः—आठवाँ; गर्भः—गर्भ; हन्ता—मारने वाला; याम्—जिसको; वहसे—लिए जा रहे हो; अबुध—हे मूर्ख।

**जब कंस घोड़ों की लगाम थामे मार्ग पर रथ हाँक रहा था, तो किसी अशरीरी आवाज ने उसको सम्बोधित किया, ''अरे मूर्ख दुष्ट! तुम जिस स्त्री को लिए जा रहे हो उसकी आठवीं सन्तान तुम्हारा वध करेगी।''**

**तात्पर्य :** इस भविष्यवाणी में *अष्टमोगर्भः* की बात थी, किन्तु स्पष्ट नहीं बतलाया गया था कि वह लड़का होगा या लड़की। यदि कंस यह भी देख सकता कि देवकी की आठवीं सन्तान लड़की होगी तो भी उसे सन्देह नहीं रहता कि आठवीं सन्तान से उसका वध होना है। 'विश्वकोश' के अनुसार *गर्भ* तथा *अर्भक* दोनों ही शिशु के द्योतक हैं। कंस अपनी बहन के प्रति वत्सल था इसीलिए वह अपनी बहन तथा बहनोई को उनके घर पहुँचाने के लिए रथचालक का काम कर रहा था। किन्तु देवतागण नहीं चाहते थे कि कंस देवकी के प्रति वत्सल रहे अतएव उन्होंने अदृश्य स्थान से कंस को उसके प्रति उकसाने के लिए प्रोत्साहित किया। यही नहीं, मरीचि के छहों पुत्रों को शाप मिला था कि वे देवकी के गर्भ से जन्म लें और कंस द्वारा वध किए जाने पर उनका उद्धार हो। जब देवकी को पता चला कि कंस उसके गर्भ से जन्म लेने वाले भगवान् के द्वारा मारा जाएगा तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुई। *वहसे* शब्द भी सार्थक है क्योंकि यह सूचित करता है कि उस भविष्यवाणी ने कंस को धिक्कारा कि तुम अपने शत्रु की माता को ले जाने वाले वाहक पशु का कार्य कर रहे हो।

**इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ।**
**भगिनीं हन्तुमारब्धं खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५॥**

शब्दार्थ

इति उक्तः—इस तरह कहे जाने पर; सः—वह ( कंस ); खलः—दुष्ट, ईर्ष्यालु; पापः—पापी; भोजानाम्—भोज कुल का; कुल-पांसनः—अपने कुल की ख्याति को नीचे गिराने वाला; भगिनीम्—अपनी बहन को; हन्तुम् आरब्धम्—मारने के लिए उद्यत; खड्ग-पाणिः—हाथ में तलवार लेकर; कचे—बाल; अग्रहीत्—पकड़ लिया।

**कंस भोजवंश का अधम व्यक्ति था क्योंकि वह ईर्ष्यालु तथा पापी था। इसलिए उसने जब यह आकाशवाणी सुनी तो उसने बाएँ हाथ से अपनी बहन के बाल पकड़ लिए और उसके सिर को धड़ से अलग करने के लिए दाहिने हाथ से अपनी तलवार निकाली।**

**तात्पर्य :** कंस रथ हाँक रहा था और बाएँ हाथ से लगामें थामे था, किन्तु ज्योंही उसने यह आकाशवाणी सुनी कि उसकी बहन की आठवीं सन्तान उसका वध करेगी तो उसने लगाम छोड़ दी, तुरन्त अपनी बहन के बाल पकड़ लिए और दाहिने हाथ में तलवार लेकर उसका वध करना चाहा। इसके पूर्व वह इतना वत्सल था कि अपनी बहन का रथ हाँक रहा था, किन्तु ज्योंही उसने स्वार्थ की बात सुनी अथवा यह सुना कि उसके प्राण संकट में हैं, तो वह सारा वात्सल्य भूल गया और तुरन्त महान् शत्रु बन गया। यही असुरों का स्वभाव है। असुर चाहे कितना ही वत्सल क्यों न हो उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा, राजनीतिज्ञ या स्त्री पर भी कभी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वे निजी हित के लिए घृणित से घृणित कार्य कर सकते हैं। इसीलिए चाणक्य पण्डित कहता है—*विश्वासो नैव कर्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु च।*

**तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ।**
**वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ॥**

शब्दार्थ

तम्—उस ( कंस ) को; जुगुप्सित-कर्माणम्—जो ऐसा घृणित कर्म करने के लिए तैयार था; नृशंसम्—अत्यन्त क्रूर; निरपत्रपम्—बेहया, निर्लज्ज; वसुदेवः—वसुदेव ने; महा-भागः—वासुदेव का अत्यन्त भाग्यशाली पिता; उवाच—कहा; परिसान्त्वयन्—सान्त्वना देते हुए।

**कंस इतना क्रूर तथा ईर्ष्यालु था कि वह निर्लज्जतापूर्वक अपनी बहन को मारने के लिए तैयार था अतः उसे शान्त करने के लिए कृष्ण के होने वाले पिता महात्मा वसुदेव ने उससे निम्नलिखित शब्द कहे।**

**तात्पर्य :** कृष्ण के होने वाले पिता वसुदेव को *महाभाग* अत्यंत ईमानदार तथा गम्भीर व्यक्ति बतलाया गया है क्योंकि यद्यपि कंस उनकी पत्नी को मारने जा रहा था, किन्तु वसुदेव गम्भीर तथा अविचल थे। वसुदेव ने शान्त मुद्रा में युक्तियुक्त तर्क प्रस्तुत करते हुए कंस को सम्बोधित किया। वसुदेव महाभाग या महापुरुष थे क्योंकि वे क्रूर व्यक्ति को शान्त करना तथा कट्टर से कट्टर शत्रु को क्षमा करना जानते थे। जो भाग्यशाली होता है उसे बाघ या साँप भी नहीं पकड़ पाते।

**श्रीवसुदेव उवाच**
**श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ।**
**स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७॥**

शब्दार्थ

श्री-वसुदेवः उवाच—महाभाग वसुदेव ने कहा; श्लाघनीय-गुणः—प्रशंसनीय गुणों से युक्त; शूरैः—शूरवीरों के द्वारा; भवान्—आप; भोज-यशः-करः—भोजवंश का दैदीप्यमान नक्षत्र; सः—आप जैसा; कथम्—किस तरह; भगिनीम्—अपनी बहन को; हन्यात्—मार सकता है; स्त्रियम्—विशेष रूप से स्त्री को; उद्वाह-पर्वणि—विवाहोत्सव के समय।

**वसुदेव ने कहा : हे साले महाशय, तुम्हारे भोज परिवार को तुम पर गर्व है और बड़े-बड़े शूरवीर तुम्हारे गुणों की प्रशंसा करते हैं। भला तुम्हारे जैसा योग्य व्यक्ति एक स्त्री को, जो उसी की बहन है, विशेष रूप से उसके विवाह के अवसर पर, मार कैसे सकता है?**

**तात्पर्य :** वैदिक नियमों के अनुसार ब्राह्मण, वृद्ध व्यक्ति, स्त्री, बालक या गाय का किसी भी स्थिति में वध नहीं करना चाहिए। वसुदेव ने इस बात पर बल दिया कि देवकी स्त्री ही नहीं अपितु कंस के परिवार की ही सदस्या है। वसुदेव से अब विवाहित होने के कारण वह *परस्त्री* थी और यदि ऐसी स्त्री का वध किया जाए तो उससे कंस को न केवल पाप लगेगा अपितु भोजवंश के राजा के रूप में उसकी कीर्ति पर कलंक चढ़ेगा। इस तरह वसुदेव ने अनेक प्रकार से कंस को आश्वासन दिलाने का प्रयास किया कि वह देवकी का वध न करे।

**मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।**
**अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥**

शब्दार्थ

मृत्युः—मृत्यु; जन्म-वताम्—जन्म लेने वाले जीवों के; वीर—हे वीर; देहेन सह—शरीर के साथ; जायते—उत्पन्न होती है; अद्य—आज; वा—चाहे; अब्द-शत—सौ वर्षों के; अन्ते—अन्त में; वा—अथवा; मृत्युः—मृत्यु; वै—निस्सन्देह; प्राणिनाम्—सारे जीवों की; ध्रुवः—निश्चित है।

**हे शूरवीर, जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है, क्योंकि शरीर के ही साथ मृत्यु का उद्‌भव होता है। कोई चाहे आज मरे या सौ वर्षों बाद, किन्तु प्रत्येक जीव की मृत्यु निश्चित है।**

**तात्पर्य :** वसुदेव कंस को यह बतलाना चाह रहे थे कि यद्यपि वह मृत्यु से भयभीत है इसलिए स्त्री तक का वध करना चाह रहा है, किन्तु वह मृत्यु से बच नहीं सकता। मृत्यु ध्रुव है। तो फिर कंस ऐसा कुछ क्यों करे जो उसकी कीर्ति तथा उसके परिवार के लिए अशोभनीय हो? जैसाकि *भगवद्‌गीता* (२.२७) में पुष्टि हुई है—

*जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।*
*तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥*

“जिसने भी जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मर चुका है उसका जन्म भी निश्चित

है। अतः अपने अपरिहार्य कार्य को करने में तुम्हें शोच नहीं करना चाहिए।'' मनुष्य को मृत्यु से डरना नहीं चाहिए प्रत्युत अपने आप को अगले जन्म के लिए तैयार करना चाहिए। उसे अपने इस मनुष्य जीवन के समय का उपयोग जन्म-मृत्यु की क्रिया को समाप्त करने में करना चाहिए। ऐसा नहीं है कि मृत्यु से अपने को बचाने के लिए पापकर्म किए जाँय। यह अच्छी बात नहीं है।

**देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।**
**देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥**

शब्दार्थ

देहे—जब शरीर; पञ्चत्वम् आपन्ने—पाँच तत्त्वों में बदल जाता है; देही—देहधारी, जीव; कर्म-अनुगः—अपने सकाम कर्मों के फलों का पालन करता हुआ; अवशः—स्वतः; देह-अन्तरम्—दूसरा शरीर ( भौतिक तत्त्वों से निर्मित ); अनुप्राप्य—फल के रूप में प्राप्त करके; प्राक्तनम्—पहले वाला; त्यजते—छोड़ देता है; वपुः—शरीर।

**जब यह शरीर मिट्टी बन जाता है और फिर से पाँच तत्त्वों में—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—परिणत हो जाता है, तो शरीर का स्वामी जीव स्वतः अपने सकाम कर्मों के अनुसार भौतिक तत्त्वों से बना दूसरा शरीर प्राप्त करता है। अगला शरीर प्राप्त होने पर वह वर्तमान शरीर को त्याग देता है।**

**तात्पर्य :** *भगवद्गीता* ( २.१३ ) में इसकी पुष्टि हुई है, जिससे आध्यात्मिक ज्ञान के शुभारम्भ का पता चलता है—

*देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।*
*तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥*

''जिस तरह इस शरीर में देहधारी आत्मा बालपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।'' व्यक्ति या पशु भौतिक देह नहीं, प्रत्युत भौतिक देह जीवात्मा का आवरण है। *भगवद्गीता* में शरीर की तुलना वस्त्र से की गई है और विस्तार से बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार अपने वस्त्र एक के बाद एक बदलता रहता है। उसी वैदिक ज्ञान की यहाँ पुष्टि हुई है। जीव अर्थात् आत्मा निरन्तर एक के बाद एक शरीर बदलता रहता है। यहाँ तक कि वर्तमान जीवन में भी शरीर बालकपन से कुमारावस्था, कुमारावस्था से युवावस्था और युवावस्था से वृद्धावस्था में बदलता जाता है। इसी कारण जब शरीर काफी वृद्ध हो जाता है, तो जीव इस शरीर को त्याग देता है और

प्रकृति के नियमानुसार अपने सकाम कर्मों, इच्छाओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं पर आधारित दूसरा शरीर पाता है। प्रकृति के नियम इस अनुक्रम को नियंत्रित करते हैं अत: जीव जब तक बहिरंगा भौतिक शक्ति के नियंत्रण में रहता है तब तक सकाम कर्मों के अनुसार शारीरिक परिवर्तन स्वत: होते रहते हैं। इसलिए वसुदेव कंस को यह बताना चाह रहे थे कि यदि वह स्त्री को मारने का यह पापकर्म करता है, तो अगले जन्म में उसे भौतिक शरीर तो मिलेगा, किन्तु उसे और कष्ट झेलने होंगे। इस तरह वसुदेव ने कंस को सलाह दी कि वह पापकर्म न करे।

जो व्यक्ति अपने अज्ञान अर्थात् तमोगुण के कारण पापकर्म करता है उसे निम्नतर शरीर मिलता है। *कारणं गुण-संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु* ( *भगवद्गीता* १३.२२)। जीवन की लाखों योनियाँ हैं। तो फिर उच्चतर तथा निम्नतर शरीर क्यों मिलते हैं? जीव को ये शरीर प्रकृति के दूषणों के कारण प्राप्त होते हैं। यदि कोई इस जीवन में तमोगुण तथा पापकर्मों ( *दुष्कृती* ) से संदूषित हो जाता है, तो अगले जीवन में उसे निश्चय ही कष्टमय शरीर प्राप्त होगा यह प्रकृति का नियम है। प्रकृति के नियम बद्धजीव की कल्पनाजनक इच्छाओं के अधीन नहीं रहते। अतएव हमारा प्रयास यही होना चाहिए कि सदैव *सत्त्वगुण* के साथ चले और रजोगुण या तमोगुण में लिप्त न हों ( *रजस्तमोभावा:*)। कामेच्छाएँ तथा लोभ जीव को लगातार अज्ञान में रखते हैं और सत्त्वगुण या शुद्ध सत्त्वगुण के पद तक पहुँचने से रोकते हैं। मनुष्य को सलाह दी जाती है कि वह शुद्ध सत्त्वगुण अर्थात् भक्ति के पद को प्राप्त हो क्योंकि तभी वह भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के फल से प्रतिरक्षित रहेगा।

**व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।**
**यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गत: ॥ ४० ॥**

शब्दार्थ

व्रजन्—रास्ते पर चलते हुए कोई व्यक्ति; तिष्ठन्—खड़े होकर; पदा एकेन—एक पाँव पर; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; एकेन—दूसरे पाँव से; गच्छति—जाता है; यथा—जिस तरह; तृण-जलौका—तिनके पर बैठा कीड़ा; एवम्—इस तरह; देही—जीव; कर्म-गतिम्—सकाम कर्मों के फल; गत:—भोगता है।

**जिस तरह रास्ते पर चलते हुए मनुष्य अपना एक पाँव जमीन पर टेकता है और फिर दूसरे पाँव को उठाता है या जिस तरह वनस्पति का एक कीड़ा पहले एक पत्ती पर बैठता है और फिर इसे छोड़ कर दूसरी पत्ती पर जाता है उसी तरह जब बद्धजीव दूसरे शरीर का आश्रय ग्रहण करता है तब पिछले शरीर को त्याग देता है।**

**तात्पर्य :** यह विधि है आत्मा द्वारा एक शरीर से दूसरे में देहान्तरण की। मृत्यु के समय, जीव अपनी मानसिक अवस्था के अनुसार सूक्ष्म शरीर द्वारा, जिसमें मन, बुद्धि तथा अहंकार सम्मिलित हैं, दूसरे स्थूल शरीर में ले जाया जाता है। जब उच्च अधिकारी यह निश्चित कर देते हैं कि जीव को किस तरह का स्थूल शरीर मिलेगा तो उसे बाध्य होकर उस शरीर में प्रवेश करना पड़ता है और इस तरह वह पिछले शरीर को स्वयमेव त्याग देता है। जो मन्दबुद्धि लोग देहान्तर की इस विधि को नहीं समझते वे यह मान बैठते हैं कि स्थूल शरीर के समाप्त होते ही जीवन हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है। ऐसे लोगों के पास मस्तिष्क होता ही नहीं जिससे देहान्तरण की विधि को समझें। सम्प्रति हरे कृष्ण आन्दोलन का काफी विरोध हो रहा है इसे "मस्तिष्क धुलाई" आन्दोलन बतलाया जाता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि पाश्चात्य देशों के तथाकथित वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा अन्य नेताओं के तनिक भी मस्तिष्क नहीं हैं। हरे कृष्ण आन्दोलन ऐसे मूर्ख लोगों की बुद्धि को चेतन करके उन्हें ऊपर उठाने के लिए प्रयत्न कर रहा है, जिससे वे मानव शरीर का लाभ उठा सकें। दुर्भाग्यवश, निपट अज्ञान के कारण ही वे हरे कृष्ण आन्दोलन को मस्तिष्क धुलाई आन्दोलन कहते हैं। वे यह नहीं जानते कि ईशभावनामृत के बिना मनुष्य को एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरण करते रहना पड़ता है। अपने शैतानी मस्तिष्क के कारण उन्हें आगे गर्हित जीवन स्वीकार करना होगा और वे इस भौतिक जगत के बद्ध जीवन से अपने को कभी भी मुक्त नहीं कर पाएँगे। इस श्लोक में आत्मा के देहान्तरण की स्पष्ट व्याख्या हुई है।

**स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं**
**मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ।**
**दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्**
**प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥**

शब्दार्थ

स्वप्ने—सपने में; यथा—जिस तरह; पश्यति—देखता है; देहम्—शरीर का प्रकार; ईदृशम्—उसी तरह; मनोरथेन—मानसिक चिन्तन द्वारा; अभिनिविष्ट—पूरी तरह लीन; चेतनः—चेतना से युक्त; दृष्ट—आँखों से देखकर जो अनुभव किया गया हो; श्रुताभ्याम्—तथा सुन करके; मनसा—मन से; अनुचिन्तयन्—सोचते, अनुभव करते तथा इच्छा करते हुए; प्रपद्यते—शरण में आता है; तत्—उस अवस्था तक; किम् अपि—क्या कहा जा सकता है; हि—निस्सन्देह; अपस्मृतिः—वर्तमान शरीर का विस्मरण।.

**किसी परिस्थिति को देखकर या सुनकर ही मनुष्य उसके बारे में चिन्तन-मनन करता है और**

**अपने इस शरीर का विचार न करते हुए उसके वशीभूत हो जाता है। इसी तरह मानसिक संतुलन द्वारा वह रात में भिन्न शरीरों तथा भिन्न परिस्थितियों में रहकर सपना देखता है और अपनी वास्तविक स्थिति को भूल जाता है। उसी प्रक्रिया के अन्तर्गत वह अपना वर्तमान शरीर त्यागकर दूसरा शरीर ग्रहण करता है ( *तथा देहान्तरप्राप्तिः* )।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में आत्मा के देहान्तर की स्पष्ट व्याख्या हुई है। मनुष्य कभी-कभी अपने वर्तमान शरीर को भूल जाता है और अपने बचपन के शरीर के विषय में विगत शरीर के बारे में सोचता है कि वह किस तरह खेलता, कूदता और बातें इत्यादि किया करता था। जब भौतिक शरीर काम के लायक नहीं रह जाता तो मिट्टी बन जाता है, ''तुम माटी हो और अन्त में माटी में मिल जाओगे।'' किन्तु जब शरीर फिर से पाँच भौतिक तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—में मिल जाता है, तो मन तब भी कार्य करता रहता है। मन सूक्ष्म तत्त्व है, जिससे शरीर बनता है जैसाकि हम अपने स्वप्न में और जग जाने पर चिन्तन के समय अनुभव करते हैं। हमें यह समझना होगा कि मानसिक चिन्तन की विधि ऐसे नए-नए प्रकार के शरीर उत्पन्न करती रहती है जिनका वास्तविक अस्तित्व ही नहीं होता। यदि हम मन की प्रकृति ( *मनोरथेन* ) तथा इसके सोचने, अनुभव करने तथा चाहने को समझ सकें तो हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि किस तरह मन से विभिन्न प्रकार के शरीर उत्पन्न होते हैं।

अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन दिव्य कार्यकलापों की ऐसी विधि प्रस्तुत करता है, जिसमें मन कृष्ण सम्बन्धी कार्यों में पूरी तरह लीन रहता है। आत्मा की उपस्थिति चेतना द्वारा अनुभव की जाती है और मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी चेतना को शुद्ध करके भौतिक से आध्यात्मिक बना ले अथवा दूसरे शब्दों में कृष्णभावनामृत में परिणत कर ले। जो आध्यात्मिक है, वह शाश्वत है और जो भौतिक है, वह अनित्य या नश्वर है। कृष्णभावनामृत के बिना मनुष्य की चेतना सदैव नश्वर वस्तुओं में लीन रहती है। इसीलिए कृष्ण ने *भगवद्गीता* (९.३४) में हर एक के लिए संस्तुति की है—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।* मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव कृष्ण के विचारों में लीन रहे, उन्हीं का भक्त बने, सदा उनकी सेवा करे और उन्हें ही सबसे बड़ा मानकर पूजे तथा नमस्कार करे। भौतिक जगत में मनुष्य किसी न किसी बड़े व्यक्ति का दास होता है और आध्यात्मिक जगत में हमारी वैधानिक

स्थिति *परब्रह्म* की सेवा करने की है। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है। *जीवेर 'स्वरूप' हयकृष्णेर 'नित्य दास'* ( *चैतन्य-चरितामृत, मध्य* २०.१०८)।

कृष्णभावनामृत में कार्य करना जीवन की सिद्धि और योग की सर्वोच्च सिद्धि है। भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* (६.४७) में कहते हैं—

*योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।*

*श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मत:॥*

''समस्त योगियों में जो अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दिव्य प्रेमाभक्ति में मेरी पूजा करते हुए सदैव मुझमें ही रहता है, वह योग में मुझसे घनिष्टतापूर्वक संयुक्त होता है और सर्वोच्च होता है।''

*संकल्प* तथा *विकल्प* के बीच डगमगाने वाले अर्थात् किसी को स्वीकार करने और फिर उसी को अस्वीकार करने वाले की दशा मृत्यु के समय एक भौतिक शरीर से दूसरे में आत्मा के स्थानान्तरण में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

*यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।*

*तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित:॥*

''शरीर त्यागते समय मनुष्य जैसी दशा का स्मरण करता है उसे अवश्यमेव वैसी ही दशा प्राप्त होती है।'' ( *भगवद्गीता* ८.६) अत: मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन को भक्तियोग पद्धति में प्रशिक्षित करे जैसाकि सदा कृष्णभावनामृत में रहने वाले महाराज अम्बरीष ने किया था। *स वै मन: कृष्ण पदारविन्दयो:।* मनुष्य को चाहिए कि चौबीसों घंटे अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों पर स्थिर रखे। ऐसा करने से अन्य इन्द्रियों के कार्यकलाप भी कृष्ण की सेवा में लगे रहेंगे। *हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते*—शुद्ध इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश की सेवा करना *भक्ति* है। जो लोग निरन्तर भक्ति में लगे रहते हैं, वे प्रकृति के भौतिक गुणों से ऊपर दिव्य पद पर स्थित होते हैं। जैसाकि कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१४.२६) में कहा है—

*मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।*

*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥*

''जो पूर्णतया भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में च्युत नहीं होता वह तीनों गुणों

को तत्क्षण पार करके ब्रह्म के स्तर पर आ जाता है।'' मनुष्य को वैदिक साहित्य से, विशेष रूप से जब वैदिक ज्ञान का नवनीत *भगवद्गीता* यथारूप में प्रस्तुत किया गया है, सफलता की कुंजी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

चूँकि मन अन्ततोगत्वा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण द्वारा नियंत्रित होता है अतएव *अपस्मृति:* शब्द महत्त्वपूर्ण है। अपनी ही पहचान को भूल जाना *अपस्मृति:* है। यह अपस्मृति भगवान् द्वारा नियंत्रित हो सकती है क्योंकि भगवान् कहते हैं— *मत्त: स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—मुझी से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होते हैं। कृष्ण मनुष्य को अपनी असली स्थिति भूलने न देकर मृत्यु के समय उसकी मूल पहचान को जागृत कर सकते हैं यद्यपि मन चंचल होता है। भले ही मृत्यु के समय मन ठीक से काम न करे, कृष्ण अपने भक्त को अपने चरणकमलों में शरण देते हैं। अत: जब भक्त अपना शरीर त्यागता है, तो मन उसे दूसरे भौतिक शरीर में नहीं ले जाता ( *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति* ) प्रत्युत भक्त को कृष्ण ऐसी जगह ले जाते हैं जहाँ वे अपनी लीलाएँ करते हैं ( *माम् एति* ) जैसाकि हम पिछले श्लोकों में बतला चुके हैं। अत: मनुष्य की चेतना सदा कृष्ण में लीन रहे तो उसका जीवन सफल हो जाएगा। अन्यथा मन आत्मा को किसी अन्य भौतिक शरीर में ले जाएगा। यह आत्मा पिता के वीर्य में प्रस्थापित होकर माता के गर्भ में स्खलित होगा। वीर्य तथा रज से माता-पिता के स्वरूप के अनुसार विशेष प्रकार का शरीर उत्पन्न करते हैं और जब शरीर परिपक्व हो जाता है, तो आत्मा उसमें प्रस्फुटित होता है और नवीन जीवन का सूत्रपात होता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में आत्मा के देहान्तरण की विधि यही है ( *तथा देहान्तरप्राप्ति:*)। दुर्भाग्यवश अल्पबुद्धि वाले लोग यह सोचते हैं कि शरीर के लुप्त होने पर सब समाप्त हो जाता है। सारा संसार ऐसे मूर्खों तथा मूढ़ों द्वारा भ्रान्त हो रहा है। किन्तु *भगवद्गीता* (२.२०) में कहा गया है— *न हन्यते हन्यमाने शरीरे।* शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होता। यह आत्मा दूसरा शरीर ग्रहण करता है।

**यतो यतो धावति दैवचोदितं**
**मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ।**
**गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ**
**प्रपद्यमान: सह तेन जायते ॥ ४२ ॥**

शब्दार्थ

यत: यत:—एक स्थान से दूसरे स्थान को या एक पद से दूसरे पद को; धावति—चिन्तन करता है; दैव-चोदितम्—भाग्य द्वारा प्रेरित; मन:—मन; विकार-आत्मकम्—एक प्रकार के भावों से दूसरे प्रकार में बदलते हुए; आप—अन्त में प्राप्त करता है ( प्रवृत्ति ); पञ्चसु—मृत्यु के समय ( जब भौतिक शरीर भौतिक पदार्थों में परिणत हो जाता है ); गुणेषु—( मुक्त न होने से मन संलग्न रहता है ) भौतिक गुणों से; माया-रचितेषु—जहाँ माया वैसा ही शरीर रचती है; देही—ऐसा शरीर धारण करने वाला आत्मा; असौ—वह; प्रपद्यमान:—शरणागत ( ऐसी स्थिति को ); सह—साथ; तेन—वैसे ही शरीर के द्वारा; जायते—जन्म लेता है।

**मृत्यु के समय मनुष्य सकाम कर्मों में निहित मन के सोचने, अनुभव करने और चाहने के अनुसार ही शरीर-विशेष प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में, मन के कार्यकलापों के अनुसार ही शरीर विकास करता है। शरीर के परिवर्तन मन की चंचलता के कारण हैं अन्यथा आत्मा तो मूल आध्यात्मिक शरीर में रह सकता है।**

**तात्पर्य :** मनुष्य यह आसानी से समझ सकता है कि मन निरन्तर चलायमान रहता है, वह अपने सोचने, अनुभव करने तथा चाहने की गुणवत्ता को बदलता रहता है। *भगवद्गीता* (६.३४) में अर्जुन ने इसकी व्याख्या की है—

*चञ्चलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।*

*तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥*

मन चञ्चल है और बड़े जोर से बदलता है। इसलिए अर्जुन ने स्वीकार किया कि मन को वश में करना बिलकुल सम्भव नहीं है यह कार्य उतना ही कठिन है जितना कि वायु को वश में करना। उदाहरणार्थ, यदि कोई नदी या समुद्र में नाव में बैठकर वायु के सहारे जा रहा हो और वायु नियंत्रण से बाहर हो तो नाव डगमगाने लगेगी और उसे संभाल पाना मुश्किल हो जाएगा। हो सकता है, वह उलट भी जाए। अत: *भव-सागर* अर्थात् मनोरथों एवं विभिन्न शरीरों में स्थानान्तरण के सागर में सर्वप्रथम मन को वश में करना चाहिए।

मन को सतत अभ्यास से वश में किया जा सकता है और योग पद्धति का यही उद्देश्य है ( *अभ्यासयोगयुक्तेन* )। किन्तु इस कलियुग में योग पद्धति असफल होने की संभावना रहती है क्योंकि इसमें कृत्रिम विधियाँ प्रयुक्त होती हैं। किन्तु यदि मन भक्तियोग में लगा रहे तो कृष्ण की कृपा से इसे आसानी से वश में किया जा सकता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है—*हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।* मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन करे क्योंकि भगवान् का नाम परम पुरुष हरि से अभिन्न है।

मनुष्य चाहे तो हरे कृष्ण मंत्र का निरंतर कीर्तन करते हुए अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों में स्थिर कर सकता है (*स वै मन: कृष्ण पदारविन्दयो:*) और इस तरह योग-सिद्धि प्राप्त कर सकता है। अन्यथा मन तो इन्द्रियभोग के लिए चंचल होता रहेगा और मनुष्य को एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करते रहना होगा क्योंकि मन केवल भौतिक तत्त्वों या दूसरे शब्दों में मिथ्या इन्द्रियतृप्ति का अभ्यस्त होता है। *मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्* (*भागवत* ७.९.४३)। मनोरथ के द्वारा नियंत्रित होने के कारण मूढ़ लोग जीवन का क्षणिक आनन्द लेने के लिए वृहद् आयोजन करते हैं, किन्तु मृत्यु के समय उन्हें अपना यह शरीर त्यागना होगा, जब कृष्ण की बहिरंगा शक्ति सब कुछ छीन लेती है (*मृत्यु: सर्वहरश्चाहम्*)। उस समय जीवन भर में जो कुछ अर्जित किया हुआ रहता है, वह सब नष्ट हो जाता है और भौतिक प्रकृति द्वारा बाध्य होकर नया शरीर स्वत: धारण करना होता है। इस जीवन में भले ही किसी ने गगनचुम्बी महल क्यों न बनाया हो, किन्तु अगले जीवन में अपनी मानसिकता के कारण उसे बिल्ली, कुत्ता या वृक्ष अथवा, हो सकता है, देवता का शरीर धारण करना पड़े। इस तरह भौतिक प्रकृति के नियमों के द्वारा शरीर प्रदत्त होता है। *कारणं गुण संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु* (*भगवद्गीता* १३.२२)। भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के सम्पर्क से ही आत्मा उच्च तथा निम्न योनियों में जन्म लेता है।

*ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:।*

*जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा:॥*

"जो सतोगुणी हैं, वे क्रमश: स्वर्गलोक को जाते हैं, जो रजोगुणी हैं, वे पृथ्वीलोक में रहते हैं और जो तमोगुणी हैं, वे नरकलोक में जाते हैं।" (*भगवद्गीता* १४.१८)

कहने का तात्पर्य यह है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज के लिए सर्वोत्कृष्ट कल्याण कार्य प्रदान करता है। अत: समाज के विज्ञ लोगों को चाहिए कि समस्त मानवता के लाभ के लिए इस आन्दोलन को गंभीरतापूर्वक समझें। अपने को जन्म-मृत्यु चक्र से बचाने के लिए अपनी चेतना को शुद्ध बनाना होगा। *सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।* मनुष्य को ऐसी सारी उपाधियों से कि—मैं अमरीकी हूँ, मैं भारतीय हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ—मुक्त होना चाहिए और इस भावभूमि पर आना चाहिए कि कृष्ण आदि-स्वामी हैं और हम सब उनके नित्यदास हैं। जब इन्द्रियाँ निर्मल होकर कृष्ण

की सेवा में लगी रहती हैं, तो सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त होती है। *हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।* कृष्णभावनामृत आन्दोलन भक्तियोग का आन्दोलन है। *वैराग्यविद्या निजभक्तियोग।* इस आन्दोलन के नियमों पर चलकर मनुष्य भौतिक मनोरथों से विलग हो जाता है और जीव तथा परमेश्वर के सेवक-सेव्य के नित्य सम्बन्ध वाले मूल पद पर स्थित हो जाता है। संक्षेप में, कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है।

**ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः**
**समीरवेगानुगतं विभाव्यते ।**
**एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्**
**गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥ ४३ ॥**

शब्दार्थ

ज्योतिः—आकाश में सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; उदक—जल में; पार्थिवेषु—या अन्य तरल पदार्थ यथा तैल में; अदः—प्रत्यक्ष रूप से; समीर-वेग-अनुगतम्—वायु के वेग से ठेला जाकर; विभाव्यते—विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं; एवम्—उसी तरह; स्व-माया-रचितेषु—अपने मनोरथों से उत्पन्न परिस्थिति में; असौ—जीव; पुमान्—मनुष्य; गुणेषु—प्रकृति के गुणों द्वारा प्रकट, भौतिक जगत में; राग-अनुगतः—अपनी आसक्ति के अनुसार; विमुह्यति—पहचान के द्वारा मोहग्रस्त होता है।.

**जब आकाश में स्थित नक्षत्र जैसे सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे तेल या जल जैसे तरल पदार्थों में प्रतिबिम्बित होते हैं, तो वायु के वेग के कारण वे विभिन्न आकारों के लगते हैं कभी गोल, कभी लम्बे तो कभी और कुछ। इसी तरह जब जीवात्मा भौतिकतावादी विचारों में मग्न रहता है, तो वह अज्ञान के कारण विविध रूपों को अपनी पहचान के रूप में ग्रहण करता है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति के भौतिक गुणों से विचलित होने के कारण वह मनोरथों के द्वारा मोहग्रस्त हो जाता है।**

**तात्पर्य :** यह श्लोक एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिससे यह समझा जा सकता है कि भौतिक जगत में नित्य आत्मा किस तरह विभिन्न पदों और विभिन्न शरीरों को ग्रहण करता है (*देहान्तरप्राप्तिः*)। चन्द्रमा स्थिर है और एक है, किन्तु जब इसका प्रतिबिम्ब जल या तेल में पड़ता है, तो हवा चलने से यह विभिन्न आकार ग्रहण करता है। इसी तरह आत्मा कृष्ण का नित्यदास है, किन्तु जब उसे प्रकृति के भौतिक गुणों में रखा जाता है, तो वह विभिन्न शरीर धारण करता है कभी देवता का, कभी मनुष्य का तो कभी कुत्ते, वृक्ष इत्यादि का। जीव भगवान् की भ्रामक शक्ति अर्थात् माया के वशीभूत होकर सोचता है कि वह अमुक-अमुक व्यक्ति—अमरीकी, भारतीय, अथवा बिल्ली, कुत्ता,

वृक्ष इत्यादि है। इसे ही *माया* कहते हैं। जब मनुष्य इस मोह से छूट जाता है और समझता है कि आत्मा इस भौतिक जगत के किसी स्वरूप से सम्बन्धित नहीं है, तो वह आध्यात्मिक पद पर (*ब्रह्मभूतो*) स्थित होता है।

इस अनुभूति को कभी-कभी *निराकार* कहा जाता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आत्मा का कोई रूप नहीं होता। आत्मा का रूप होता है, किन्तु भौतिक कल्मष के कारण उसे जो बाह्य-उद्वेलित रूप प्राप्त होता है, वह मिथ्या होता है। इसी तरह ईश्वर को भी *निराकार* कहा जाता है, जिसका अर्थ है कि ईश्वर के कोई स्वरूप नहीं होता, किन्तु वह *सच्चिदानन्द विग्रह* है। जीव इसी परम सच्चिदानन्द विग्रह का अंश है, किन्तु उसके भौतिक स्वरूप नश्वर या भ्रामक होते हैं। जीव तथा परमेश्वर दोनों के आदि आध्यात्मिक स्वरूप (*सच्चिदानन्द विग्रह*) होते हैं लेकिन परमेश्वर अपना स्वरूप नहीं बदलता। परमेश्वर उसी रूप में रहता है, किन्तु जीव को प्रकृति से बाध्य होकर विभिन्न रूप धारण करने पड़ते हैं। जब जीव को ये विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं, तो वह उन्हें अपना स्वरूप मान बैठता है न कि अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप को। ज्यों ही जीव अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप तथा ज्ञान को फिर से पा लेता है त्यों ही वह परम स्वरूप परमेश्वर की शरण में चला जाता है। इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* (७.१९) में हुई है। *बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।* जब जीव अनेकानेक जन्मों में विभिन्न स्वरूपों के पश्चात् अपने मूल कृष्णभावनामृत स्वरूप में लौटता है, तो वह तुरन्त परम स्वरूप कृष्ण के चरणकमलों में अपने को समर्पित कर देता है। यही मुक्ति है। *भगवद्गीता* (१८.५४) में भगवान् कहते हैं—

*ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।*

*सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥*

''जो दिव्य पद पर स्थित है उसे परब्रह्म की अनुभूति तुरन्त ही हो जाती है और वह परम प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी शोक करता है न किसी वस्तु की इच्छा करता है। वह हर जीव को सम-भाव से देखता है। उस अवस्था में वह मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त करता है।'' परमस्वरूप के प्रति समर्पण भक्ति का प्रतिफल है। यह भक्ति अथवा अपनी स्थिति का ज्ञान ही पूर्ण मुक्ति है। जब तक मनुष्य परम सत्य को निराकार मानता है तब तक उसे शुद्ध ज्ञान नहीं होता किन्तु फिर भी उसे शुद्ध ज्ञान के लिए

संघर्ष करना चाहिए। *क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्तचेतसाम्* ( *भगवद्गीता* १२.५)। भले ही कोई आध्यात्मिक दृष्टि से कितना ही उन्नत क्यों न हो यदि वह परम सत्य के निराकार स्वरूप के प्रति आसक्त है, तो उसे और अधिक श्रम करने की आवश्यकता रहती है जैसाकि *क्लेशोऽधिकतर:* शब्दों से सूचित होता है जिनका अर्थ है और अधिक कष्ट। किन्तु भक्त को अपना आदि आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती और वह भगवान् के आदि रूप को समझ लेता है।

स्वयं कृष्ण *भगवद्गीता* के द्वितीय अध्याय में जीवों के विविध रूपों का वर्णन करते हुए अर्जुन को बतलाते हैं कि वे, अर्जुन तथा अन्य सारे जीव, जो इसके पूर्व अपने मूल रूप में थे अब पृथक्-पृथक् पहचान रखते हैं। वे भूतकाल में वैयक्तिक अस्तित्व वाले थे, अब भी हैं और भविष्य में भी अपना-अपना स्वरूप रखते होंगे। अन्तर इतना ही है कि बद्धजीव विविध भौतिक स्वरूपों में प्रकट होता है, जबकि कृष्ण अपने मूल आध्यात्मिक रूप में प्रकट होते हैं। दुर्भाग्यवश जिनका आध्यात्मिक ज्ञान अल्प है वे सोचते हैं कि कृष्ण उनके ही जैसे हैं और कृष्ण का स्वरूप भौतिक स्वरूपों जैसा है। *अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्* ( *भगवद्गीता* ९.११)। कृष्ण कभी भी भौतिक ज्ञान से गर्वित नहीं होते इसीलिए उन्हें अच्युत कहा जाता है, जबकि जीव नीचे गिरते हैं (च्युत) और प्रकृति द्वारा विक्षुब्ध होते हैं। परमेश्वर तथा जीवों में यही अन्तर है।

इस प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि दिव्य पद पर स्थित होने के कारण वसुदेव ने कंस को सलाह दी कि वह और आगे पापकर्म न करे। असुरों का प्रतिनिधि कंस कृष्ण या ईश्वर को मारने के लिए सदा तैयार रहता था जबकि वसुदेव ऐसे दिव्य पद प्राप्त पुरुष का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके यहाँ कृष्ण जन्म लेते हैं (वासुदेव पुत्र हैं वसुदेव के)। वसुदेव चाहते थे कि उनका साला कंस अपनी बहन की हत्या का पापकर्म न करे क्योंकि भौतिक प्रकृति द्वारा विक्षुब्ध किये जाने पर कंस को ऐसा शरीर धारण करना होगा जिसमें उसे बारम्बार कष्ट सहना पड़ेगा। *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र (५.५.४) ऋषभदेव भी कहते हैं—

*न साधुमन्ये यत आत्मनोऽयम्*

*असन्नपि क्लेशद आस देह:।*

जब तक जीव तथाकथित सुख-दुख के सकाम-कर्मों में फँसा रहता है तब तक उसे ऐसा विशेष

शरीर प्राप्त होता रहेगा जिसमें भौतिक प्रकृति के कारण उसे तीन प्रकार के तापों को सहन करना होगा ( *त्रितापयन्त्रणा* )। अत: बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने को भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के प्रभाव से मुक्त कर ले और भगवान् कृष्ण की सेवा में लग कर अपने मूल आध्यात्मिक शरीर को फिर से प्राप्त करे। संसार में आसक्त रहने पर मनुष्य को जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग स्वीकार करने होंगे। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि तथाकथित अच्छे तथा बुरे सकाम कर्मों के फेर में न पड़कर वह अपने जीवन को कृष्णभावनामृत में प्रगति करने में लगाए जिससे उसे दूसरा शरीर न धारण करना पड़े ( *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति* ) और वह भगवद्धाम वापस जा सके।

**तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविध: ।**
**आत्मन: क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४॥**

शब्दार्थ

तस्मात्—अत:; न—नहीं; कस्यचित्—किसी की; द्रोहम्—ईर्ष्या; आचरेत्—आचरण करे; स:—पुरुष ( कंस ); तथा-विध:—( वसुदेव द्वारा ) इस प्रकार से उपदेश दिया गया; आत्मन:—अपना; क्षेमम्—कल्याण; अन्विच्छन्—चाहे तो; द्रोग्धु:—अन्यों से ईर्ष्या रखने वाले का; वै—निस्सन्देह; परत:—अन्यों से; भयम्—भय का कारण होता है।

**चूँकि ईर्ष्यालु एवं अपवित्र कार्य ऐसे शरीर का कारण बनते हैं जिससे अगले जीवन में कष्ट भोगना पड़ता है इसलिए मनुष्य अपवित्र कार्य करे ही क्यों? अपने कल्याण को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को चाहिए कि वह किसी से ईर्ष्या न करे क्योंकि ईर्ष्यालु व्यक्ति को इस जीवन में या अगले जीवन में अपने शत्रुओं से सदा हानि का भय बना रहता है।**

**तात्पर्य :** अन्य जीवों के प्रति शत्रु भाव रखने के बजाय मनुष्य को चाहिए कि भगवान् की सेवा में लगकर पवित्र कार्य करे जिससे इस जीवन तथा अगले दोनों जीवनों में भयापूर्ण स्थिति से बच सके। इस सम्बन्ध में, महान् राजनीतिज्ञ चाणक्य पण्डित का निम्नलिखित नैतिक उपदेश अत्यन्त सार्थक है—

*त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधु समागमम्।*

*कुरु पुण्यमहो रात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥*

मनुष्य को चाहिए कि खलों, असुरों तथा अभक्तों की संगति का त्याग करे और सदैव भक्तों तथा सन्त पुरुषों की संगति करे। उसे चाहिए कि इस जीवन को नश्वर मानकर पुण्यकर्म करे और क्षणिक सुख तथा दुख में लिप्त न हो। कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे मानव समाज को कृष्णभावनाभावित होने के इसी सिद्धान्त की शिक्षा देता है और इस तरह उनके जीवन की समस्याओं को सदा-सदा के

लिए हल कर देता है। ( *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन* )

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ।
हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

एषा—यह; तव—तुम्हारी; अनुजा—छोटी बहन; बाला—अबोध स्त्री; कृपणा—तुम पर आश्रित; पुत्रिका-उपमा—तुम्हारी ही पुत्री के समान; हन्तुम्—उसे मारना; न—नहीं; अर्हसि—तुम्हें चाहिए; कल्याणीम्—तुम्हारे स्नेहाधीन; इमाम्—इसको; त्वम्—तुम; दीन-वत्सलः—गरीब तथा अबोध पर अत्यन्त दयालु।

तुम्हारी छोटी बहन बेचारी देवकी तुम्हारी पुत्री के समान है और वह लाड़-प्यार से पाले जाने योग्य है। तुम दयालु हो, अतः तुम्हें इसका वध नहीं करना चाहिए। निस्संदेह यह तुम्हारे स्नेह की पात्र है।

श्रीशुक उवाच
एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ।
न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; सः—वह ( कंस को ); सामभिः—समझाने-बुझाने के प्रयासों से; भेदैः—नैतिक उपदेश द्वारा कि वह अन्यों के प्रति क्रूर न बने; बोध्यमानः अपि—किये जाने पर भी; दारुणः—अत्यन्त क्रूर; न न्यवर्तत—नहीं माना ( जघन्य कार्य करने से ); कौरव्य—हे महाराज परीक्षित; पुरुष-अदान्—राक्षसों का; अनुव्रतः—अनुयायी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुवंश में श्रेष्ठ, कंस अत्यंत क्रूर था और वास्तव में राक्षसों का अनुयायी था। अतएव वसुदेव के सदुपदेशों से उसे न तो समझाया-बुझाया जा सकता था, न ही भयभीत किया जा सकता था। उसे इस जीवन में या अगले जीवन में पापकर्मों के फलों की कोई चिन्ता नहीं थी।

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ।
प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

निर्बन्धम्—करने के संकल्प को; तस्य—उस ( कंस ) का; तम्—उस ( संकल्प ) को; ज्ञात्वा—जानकर; विचिन्त्य—गहराई से सोचकर; आनकदुन्दुभिः—वसुदेव; प्राप्तम्—आया हुआ; कालम्—आसन्न मृत्यु-संकट को; प्रतिव्योढुम्—ऐसे कार्यों से रोकने के लिए; इदम्—यह; तत्र—वहाँ; अन्वपद्यत—अन्य उपायों को सोचा।

जब वसुदेव ने देखा कि कंस अपनी बहन देवकी को मार डालने पर तुला हुआ है, तो उसने अपने मन में गम्भीरतापूर्वक सोचा। मृत्यु को आया हुआ देखकर उसने कंस को रोकने का दूसरा

उपाय सोचा।

**तात्पर्य :** यद्यपि वसुदेव ने देखा कि उसकी पत्नी देवकी के मारे जाने का संकट उपस्थित है, किन्तु उसे अपने कल्याण का भरोसा था क्योंकि उसके जन्म के समय देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजाई थीं अत: उसने देवकी को बचाने की दूसरी युक्ति सोची।

**मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ।**
**यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥**

शब्दार्थ

मृत्युः—मृत्यु; बुद्धि-मता—बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा; अपोह्यः—दूर रहना चाहिए; यावत्—जब तक; बुद्धि-बल-उदयम्—बुद्धि तथा शारीरिक शक्ति रहते हुए; यदि—यदि; असौ—वह ( मृत्यु ); न निवर्तेत—रोकी नहीं जा सकती; न—नहीं; अपराधः—अपराध; अस्ति—है; देहिनः—मृत्यु संकट में फँसे व्यक्ति का।

**बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि जब तक बुद्धि तथा शारीरिक पराक्रम रहे, तब तक मृत्यु से बचने का प्रयास करता रहे। हर देहधारी का यही कर्तव्य है। यदि उद्यम करने पर भी मृत्यु को टाला नहीं जा सके, तो मृत्यु को वरण करने वाला मनुष्य अपराधी नहीं है।**

**तात्पर्य :** असामयिक मृत्यु का सामना करने वाले व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है कि वह अपनी रक्षा का पूरा प्रयत्न करे। यद्यपि मृत्यु निश्चित है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि उससे बचे और बिना विरोध के मृत्यु को वरण न करे क्योंकि प्रत्येक जीव नित्य आत्मा है। चूँकि मृत्यु इस जगत में निन्दनीय जीवन पर थोपा गया दण्ड होती है, अत: वैदिक संस्कृति मृत्यु से बचने पर आधारित है ( *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति* )। हर व्यक्ति को चाहिए कि आध्यात्मिक जीवन का अनुशीलन करके मृत्यु तथा पुनर्जन्म से बचने का प्रयास करे और जीवित रहने के लिए संघर्ष किए बिना मृत्यु के सामने घुटने न टेके। जो व्यक्ति मृत्यु को रोकने का प्रयास नहीं करता वह बुद्धिमान मनुष्य नहीं है। चूँकि देवकी को आसन्न मृत्यु का सामना करना पड़ रहा था अतएव वसुदेव का कर्तव्य था कि उसे प्राणपण से बचाते। अत: उन्होंने कंस को फुसलाने का दूसरा तरीका सोचा जिससे देवकी को बचाया जा सके।

**प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् ।**
**सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ ॥**
**विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया ।**
**उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥**

शब्दार्थ

प्रदाय—देने का वादा करके; मृत्यवे—देवकी के लिए कालस्वरूप कंस को; पुत्रान्—पुत्रों को; मोचये—आसन्न संकट से छुड़ाने के लिए; कृपणाम्—निर्दोष; इमाम्—देवकी को; सुताः—पुत्र; मे—मेरे; यदि—यदि; जायेरन्—उत्पन्न होंगे; मृत्युः—कंस; वा—अथवा; न—नहीं; म्रियेत—मरना होगा; चेत्—यदि; विपर्ययः—इसके विपरीत; वा—अथवा; किम्—क्या; न—नहीं; स्यात्—हो सकता है; गतिः—गति; धातुः—प्रारब्ध की; दुरत्यया—समझना मुश्किल है; उपस्थितः—अभी प्राप्त होने वाला; निवर्तेत—रुक सकता है; निवृत्तः—देवकी की मृत्यु को रोकने पर; पुनः आपतेत्—भविष्य में फिर हो सके ( तो मैं क्या कर सकता हूँ )।

**वसुदेव ने विचार किया: मैं मृत्यु रूपी कंस को अपने सारे पुत्र देकर देवकी के प्राण बचा सकता हूँ। हो सकता है कि कंस मेरे पुत्रों के जन्म के पूर्व ही मर जाए, या फिर जब उसे मेरे पुत्र के हाथों से मरना लिखा है, तो मेरा कोई पुत्र उसे मारे ही। इस समय मुझे चाहिए कि मैं कंस को अपने सारे पुत्रों को सौंपने की प्रतिज्ञा कर लूँ जिससे कंस अपनी यह धमकी त्याग दे और यदि आगे चलकर कंस मर जाता है, तो फिर मुझे डरने की कोई बात नहीं रह जाती।**

**तात्पर्य :** अपने पुत्रों को कंस को सौंपने का वचन देकर वसुदेव अपनी पत्नी देवकी के प्राण बचाना चाह रहे थे। उन्होंने सोचा, "हो सकता है भविष्य में कंस मर जाए या हो सकता है कि मेरे पुत्र ही न हों। यदि पुत्र उत्पन्न भी हो और मैं उसे कंस को दे दूँ तो कंस उसके हाथों मर सकता है क्योंकि दैववश कुछ भी हो सकता है। यह समझ सकना बहुत कठिन है कि विधाता द्वारा किस तरह व्यवस्था की जाती है।" इस तरह वसुदेव ने निश्चय किया कि मैं देवकी को मृत्यु के आसन्न संकट से उबारने के लिए अपने पुत्रों को कंस के हाथों सौंप देने का वचन दे दूँ।

अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयो-
रदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ।
एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः
शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

अग्नेः—जंगल की आग का; यथा—जिस तरह; दारु—लकड़ी का; वियोग-योगयोः—संयोग तथा वियोग दोनों का; अदृष्टतः—अदृश्य प्रारब्ध की अपेक्षा; अन्यत्—कोई अन्य कारण या संयोग; न—नहीं; निमित्तम्—कारण; अस्ति—है; एवम्—इस प्रकार; हि—निश्चय ही; जन्तोः—जीव का; अपि—निस्सन्देह; दुर्विभाव्यः—पाया नहीं जा सकता; शरीर—शरीर का; संयोग—स्वीकृति; वियोग—परित्याग; हेतुः—कारण।

**जब किसी अदृश्य कारण से आग लकड़ी के एक टुकड़े से लपक कर दूसरे खंड को जला देती है, तो इसका कारण प्रारब्ध है। इसी तरह जब जीव एक प्रकार का शरीर स्वीकार करके दूसरे का परित्याग करता है, तो इसमें अदृश्य प्रारब्ध के अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं होता।**

**तात्पर्य :** जब किसी गाँव में आग लगती है, तो कभी-कभी वह एक घर को फाँद कर दूसरे घर को जला देती है। इसी तरह जब जंगल में आग लगती है, तो वह कभी-कभी एक वृक्ष से फाँद कर दूसरे में लग जाती है। ऐसा क्यों होता है, यह कोई नहीं जानता। यह कल्पना ही की जा सकती है कि पास के घर या वृक्ष को छोड़कर दूर के घर या वृक्ष में आग क्यों लगी, किन्तु इसका असली कारण प्रारब्ध है। यही बात आत्मा के देहान्तरण पर भी लागू होती है, जिसके फलस्वरूप इस जीवन का प्रधानमंत्री अगले जीवन में कुत्ता बन सकता है। अदृश्य प्रारब्ध के कार्य को किसी व्यावहारिक प्रयोगात्मक ज्ञान से निश्चित नहीं किया जा सकता अत: इस तर्क से ही सन्तोष करना होगा कि सारे कार्य प्रारब्ध द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

**एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ।**
**पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुर:सरम् ॥ ५२ ॥**

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; विमृश्य—सोच विचार कर; तम्—कंस को; पापम्—अत्यन्त पापी; यावत्—यथासम्भव; आत्मनि-दर्शनम्—अपनी बुद्धि भर, भरसक; पूजयाम् आस—प्रशंसा की; वै—निस्सन्देह; शौरि:—वसुदेव ने; बहु-मान—सत्कार करते हुए; पुर:सरम्—उसके सामने।

**इस तरह इस विषय पर अपनी बुद्धिसे भरपूर विचार करने के बाद वसुदेव ने पापी कंस के समक्ष बड़े ही आदरपूर्वक अपना प्रस्ताव रखा।**

**प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ।**
**मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥**

शब्दार्थ

प्रसन्न-वदन-अम्भोज:—वसुदेव, जो बाहर से परम प्रसन्न लग रहे थे; नृशंसम्—अत्यन्त क्रूर; निरपत्रपम्—निर्लज्ज कंस को; मनसा—मन से; दूयमानेन—चिन्ता तथा दुख से पूर्ण; विहसन्—बाहर से हँसते हुए; इदम् अब्रवीत्—इस प्रकार बोले।

**वसुदेव का मन चिन्ता से पूर्ण था क्योंकि उनकी पत्नी संकट में थीं, किन्तु क्रूर, निर्लज्ज तथा पापी कंस को प्रसन्न करने के उद्देश्य से बनावटी हँसी लाते हुए वे इस प्रकार बोले।**

**तात्पर्य :** कभी-कभी संकटकालीन स्थिति में कपट से काम चलाना पड़ता है जैसाकि वसुदेव ने अपनी पत्नी को बचाने के लिए किया। यह भौतिक जगत बहुत ही जटिल है और अपना कर्तव्य निभाने के लिए ऐसी दोहरी चाल अपनानी पड़ती है। वसुदेव ने कृष्ण को जन्म देने के लिए अपनी पत्नी को बचाने के लिए हर सम्भव प्रयास किए। इससे सूचित होता है कि कृष्ण तथा उनके हितों की

रक्षा के लिए दोहरी चाल से काम लिया जा सकता है। पूर्व-घोषित व्यवस्था के अनुसार कंस का वध करने के लिए कृष्ण को वसुदेव तथा देवकी से जन्म लेना था। अत: वसुदेव को इस स्थिति से निपटने के लिए हर प्रयत्न करना पड़ा। यद्यपि सारी घटनाएँ कृष्ण द्वारा पूर्वनियोजित होती हैं, किन्तु भक्त को कृष्ण की सेवा के लिए हर सम्भव प्रयास करना होता है। कृष्ण स्वयं सर्वशक्तिमान हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि भक्त को हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाना चाहिए और सबकुछ कृष्ण पर ही छोड़ देना चाहिये। *भगवद्गीता* से भी यही उपदेश प्राप्त होता है। यद्यपि अर्जुन के लिए कृष्ण सब कुछ कर रहे थे, किन्तु अर्जुन कभी अहिंसक की तरह आलसी बन कर बैठा नहीं। वह युद्ध में यथाशक्ति लड़ने और विजयी बनने का प्रयास करता रहा।

श्रीवसुदेव उवाच

**न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीरवाक् ।**
**पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥५४॥**

शब्दार्थ

श्री-वसुदेव: उवाच—श्री वसुदेव ने कहा; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अस्या:—इससे (देवकी से); ते—तुम्हारा; भयम्—भय; सौम्य—हे शालीन; यत्—जो; वै—निस्सन्देह; सा—वह; आह—बोली; अ-शरीर-वाक्—बिना शरीर के वाणी; पुत्रान्—अपने सारे पुत्रों को; समर्पयिष्ये—तुम्हें सौंप दूँगा; अस्या:—इस देवकी के; यत:—जिससे; ते—तुम्हारा; भयम्—भय; उत्थितम्—उत्पन्न हुआ है।

**वसुदेव ने कहा : हे भद्र-श्रेष्ठ, तुमने अदृश्यवाणी से जो भी सुना है उसके लिए तुम्हें अपनी बहन देवकी से तनिक भी डरने की कोई बात नहीं है। तुम्हारी मृत्यु का कारण उसके पुत्र होंगे अत: मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि जब उसके पुत्र उत्पन्न होंगे, जिनसे तुम्हें डर है, तो उन सबको लाकर मैं तुम्हें सौंप दिया करूँगा।**

**तात्पर्य :** कंस को देवकी से भय था कि उसके आठवें गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही उसका वध करेगा। इसलिए वसुदेव ने अपने साले को सर्वाधिक सुरक्षा का वचन दिया कि वह सारे पुत्रों को लाकर उसे दे दिया करेगा। आठवें पुत्र की प्रतीक्षा न करके वह प्रारम्भ से ही देवकी के गर्भ से उत्पन्न सारे पुत्रों को कंस के हाथों सौंप देगा। वसुदेव ने कंस के समक्ष यह सबसे उदार प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

श्रीशुक उवाच

**स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ।**
**वसुदेवोऽपि तं प्रीत: प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥५५॥**

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; स्वसुः—अपनी बहन के ( देवकी के ); वधात्—वध से; निववृते—कुछ काल के लिए रुक गया; कंसः—कंस; तत्-वाक्य—वसुदेव के वचन; सार-वित्—सही जानकर; वसुदेवः—वसुदेव; अपि—भी; तम्—उसको ( कंस को ); प्रीतः—तुष्ट होकर; प्रशस्य—अधिक सान्त्वना देकर; प्राविशत् गृहम्—अपने घर में प्रवेश किया।

**श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : कंस वसुदेव के तर्कों से सहमत हो गया और वसुदेव के वचनों पर पूरा भरोसा करके उसने अपनी बहन को मारने का विचार छोड़ दिया। वसुदेव ने कंस से प्रसन्न होकर उसे और भी सान्त्वना दी और अपने घर में प्रवेश किया।**

**तात्पर्य :** यद्यपि कंस पापी असुर था, किन्तु उसे विश्वास था कि वसुदेव अपने वचनों से कभी डिगेगा नहीं। वसुदेव जैसे शुद्ध भक्त का चरित्र ऐसा था कि कंस जैसे महान् असुर को भी उसके वचनों पर दृढ़ विश्वास था और वह सन्तुष्ट हो गया। *यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः* ( *भागवत* ५.१८.१२ )। भक्त में सारे अच्छे गुण विद्यमान रहते हैं यहाँ तक कि कंस तक को भी वसुदेव के वचनों पर विश्वास था।

**अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ।**
**पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥**

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; काले—समय बीतने पर; उपावृत्ते—परिपक्व होने पर; देवकी—कृष्ण के पिता वसुदेव की पत्नी ने; सर्व-देवता—देवकी, जिसके लिए सारे देवता तथा स्वयं भगवान् प्रकट हुए; पुत्रान्—पुत्रों को; प्रसुषुवे—उत्पन्न किया; च—तथा; अष्टौ—आठ; कन्यां च—तथा एक कन्या सुभद्रा को भी; एव—निस्सन्देह; अनुवत्सरम्—वर्षानुवर्ष, प्रतिवर्ष।

**तत्पश्चात् प्रति-वर्ष समय आने पर ईश्वर तथा अन्य देवताओं की माता देवकी ने एक शिशु को जन्म दिया। इस तरह एक के बाद एक उनके आठ पुत्र तथा सुभद्रा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई।**

**तात्पर्य :** गुरु को कभी-कभी *सर्वदेवमयोगुरु* कहकर महिमामंडित किया जाता है ( *भागवत* ११.७.२७ )। आध्यात्मिक गुरु की कृपा से विभिन्न प्रकार के देवों को समझा जा सकता है। *देव* शब्द ईश्वर का सूचक है, जो समस्त देवताओं (देवों) का मूल उद्गम है। *भगवद्गीता* (१०.२) में भगवान् कहते हैं—*अहं आदिर्हि देवानाम्*—मैं समस्त देवों का उद्गम हूँ। आदि पुरुष भगवान् विष्णु अपने विभिन्न रूपों में विस्तार करते हैं। *तदैक्षत बहुस्याम्* ( *छान्दोग्य उपनिषद्* ६.२.३ )। वे ही अनेक रूपों में विस्तीर्ण हो गए। *अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम्* ( *ब्रह्म-संहिता* ५.३३ )। स्वरूप की विभिन्न

कोटियाँ *स्वांश* तथा *विभिन्नांश* कहलाती हैं। *स्वांश* अथवा *विष्णु-तत्त्व* भगवान् होते हैं और *विभिन्नांश जीवतत्त्व* होते हैं, जो भगवान् के अंश हैं (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:*)। यदि हम कृष्ण को भगवान् मानकर उनकी पूजा करते हैं, तो भगवान् के सारे अंश स्वत: पुज जाते हैं। *सर्वार्हणमच्युतेज्या* (*भागवत* ४.३१.१४)। कृष्ण अच्युत कहलाते हैं (*सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत*)। अच्युत कृष्ण की पूजा करने से सारे देवताओं की स्वत: पूजा हो लेती है। तब न तो विष्णु-तत्त्व न ही जीव-तत्त्व को अलग-अलग पूजने की आवश्यकता रह जाती है। यदि कृष्ण पर ध्यान एकाग्र किया जाए तो हर एक की पूजा हो जाती है। अत: कृष्ण को जन्म देने के कारण माता देवकी को *सर्वदेवता* कहा गया है।

**कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभि: ।**
**अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वल: ॥ ५७ ॥**

शब्दार्थ

**कीर्तिमन्तम्**—कीर्तिमान नाम से; **प्रथम-जम्**—पहले पहल जन्मा शिशु; **कंसाय**—कंस को; **आनकदुन्दुभि:**—वसुदेव द्वारा; **अर्पयाम् आस**—दे दिया गया; **कृच्छ्रेण**—बड़ी मुश्किल से; **स:**—वह (वसुदेव); **अनृतात्**—झूठा बनने के भय से, वचन भंग करने से; **अति-विह्वल:**—अत्यन्त भयभीत।

**वसुदेव अत्यधिक विह्वल थे कि कहीं उनका वचन भंग हुआ तो वे झूठे साबित होंगे। इस तरह उन्होंने बड़ी ही वेदना के साथ अपने प्रथम पुत्र कीर्तिमान को कंस के हाथों में सौंप दिया।**

**तात्पर्य :** वैदिक पद्धति में, ज्यों ही कोई बच्चा, विशेषकर पुत्र, उत्पन्न होता है, तो पिता विद्वान ब्राह्मणों को बुलवाता है और बच्चे की कुंडली के अनुसार उसका नामकरण किया जाता है। इसे *नामकरण संस्कार* कहते हैं। इस तरह वर्णाश्रम धर्म पद्धति में दस *संस्कार* होते हैं जिनमें से नामकरण संस्कार एक है। यद्यपि वसुदेव के प्रथम पुत्र को कंस के हाथों सौंप दिया जाना था, किन्तु उसका नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ और उसका नाम कीर्तिमान रखा गया। ऐसे नाम जन्म के तुरन्त बाद रखे जाते हैं।

**किं दु:सहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।**
**किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥**

शब्दार्थ

किम्—क्या; दु:सहम्—पीड़ाप्रद है; नु—निस्सन्देह; साधूनाम्—साधु पुरुषों के लिए; विदुषाम्—विद्वान पुरुषों के लिए; किम् अपेक्षितम्—क्या निर्भरता है; किम् अकार्यम्—क्या मना है; कदर्याणाम्—अधम पुरुषों के लिए; दुस्त्यजम्—छोड़ पाना अत्यन्त कठिन; किम्—क्या; धृत-आत्मनाम्—स्वरूपसिद्ध व्यक्तियों के लिए।.

**वे साधु पुरुष जो सत्य पर अटल रहते हैं, उनके लिए क्या पीड़ादायक है? उन शुद्ध भक्तों के लिए जो भगवान् को तत्त्व के रूप में जानते हैं, भला स्वतंत्रता क्यों नहीं होती? निम्नचरित्र वाले पुरुषों के लिए कौन से कार्य वर्जित हैं? जिन्होंने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर अपने को पूरी तरह समर्पित कर दिया है वे कृष्ण के लिए भला कौन सी वस्तु नहीं त्याग सकते?**

**तात्पर्य :** चूँकि देवकी के आठवें पुत्र द्वारा कंस का वध होना था अत: यह प्रश्न किया जा सकता है कि वसुदेव को पहले पुत्र को ले जाकर देने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यह है कि वसुदेव ने कंस को वचन दिया था कि वह देवकी से उत्पन्न सारे पुत्रों को लाकर सौंप देगा। असुर होने के कारण कंस को विश्वास नहीं हो पा रहा था कि आठवीं सन्तान ही उसका वध करेगी। उसने यह मान लिया था कि वह देवकी की किसी भी सन्तान के द्वारा मारा जा सकता है। इसीलिए देवकी को बचाने के लिए वसुदेव ने कंस को हर सन्तान, चाहे वह लड़का हो या लड़की, देने का वचन दिया था। दूसरी दृष्टि से, वसुदेव तथा देवकी दोनों परम प्रसन्न थे कि भगवान् कृष्ण आठवें पुत्र के रूप में उनके यहाँ उत्पन्न होंगे। भगवान् का शुद्ध भक्त होने से वसुदेव कृष्ण को देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होते देखने के लिए लालायित थे। इसीलिए वे सारी सन्तानों को तुरन्त सौंपना चाहते थे जिससे आठवीं सन्तान की बारी आए और कृष्ण प्रकट हों। इसीलिए प्रतिवर्ष वे एक सन्तान उत्पन्न करते रहे जिससे कृष्ण यथासम्भव शीघ्र ही उत्पन्न हों।

**दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरे: सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ।**
**कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥**

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; समत्वम्—सुख या दुख से अविचलित, समभाव से; तत्—उस; शौरे:—वसुदेव के; सत्ये—सत्य में; च—निस्सन्देह; एव—निश्चय ही; व्यवस्थितिम्—दृढ़ परिस्थिति; कंस:—कंस ने; तुष्ट-मना:—अत्यन्त संतुष्ट होकर (अपना वचन निभाने के लिए पहली संतान लाकर सौंपने के वसुदेव के आचरण से); राजन्—हे महाराज परीक्षित; प्रहसन्—हँसते हुए; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।.

**हे राजा परीक्षित, जब कंस ने देखा कि वसुदेव सत्य में स्थिर रहते हुए अपनी सन्तान उसे सौंपने में समभाव बने रहे, तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसने हँसते हुए यह कहा।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में *समत्वम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। *समत्वम्* सूचक है ऐसे व्यक्ति का जो

सुख या दुख से अप्रभावित रहते हुए सदैव समरस रहता है। वसुदेव इतने समरस थे कि अपने प्रथम जातपुत्र को कंस के हाथों मारे जाने के लिए सौंपते हुए भी तनिक भी विचलित नहीं हुए। *भगवद्गीता* (२.५६) में कहा गया है—*दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:।* भौतिक जगत में न तो किसी को सुखी रहने के लिए अत्यन्त उत्सुक होना चाहिए, न ही भौतिक दुख से अधिक दुखी होना चाहिए। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि( *भगवद्गीता* २.१४)—

*मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदु:खदा:।*

*आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥*

"हे कुन्तीपुत्र! सुख तथा दुख का अस्थायी प्राकट्य और कालक्रम में उनका अदृश्य हो जाना शीत तथा ग्रीष्म ऋतुओं के आने तथा जाने के तुल्य है। हे भरतवंशी! ये इन्द्रियबोध से उत्पन्न होते हैं और मनुष्य को चाहिए कि विचलित हुए बिना इन्हें सहना सीखे।" स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तथाकथित दुख या सुख से कभी भी विचलित नहीं होता और वसुदेव जैसे महान् भक्त पर तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है जिन्होंने अपने व्यावहारिक उदाहरण द्वारा ऐसा कर दिखलाया। वे कंस के हाथों अपनी पहली संतान मारे जाने के लिए सौंपते समय तनिक भी उद्विग्न नहीं थे।

**प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम्।**
**अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहित: किल॥६०॥**

शब्दार्थ

प्रतियातु—हे वसुदेव, अपने बच्चे को घर ले जाओ; कुमार:—नवजात शिशु; अयम्—यह; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अस्मात्—उससे; अस्ति—है; मे—मेरा; भयम्—भय; अष्टमात्—आठवें से; युवयो:—तुम पति-पत्नी दोनों के; गर्भात्—गर्भ से; मृत्यु:—मृत्यु; मे—मेरा; विहित:—जो होना है; किल—निस्सन्देह।

**हे वसुदेव, तुम अपने बच्चे को वापस ले सकते हो और घर जा सकते हो। मुझे तो तुम्हारी और देवकी की आठवीं सन्तान से चिन्तित हूँ, जिसके हाथों मेरी मृत्यु लिखी है।**

**तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभि:।**
**नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मन:॥६१॥**

शब्दार्थ

तथा—बहुत अच्छा; इति—इस प्रकार; सुतम् आदाय—अपने पुत्र को वापस लाकर; ययौ—उस स्थान से चला गया; आनकदुन्दुभि:—वसुदेव; न अभ्यनन्दत—बहुत महत्त्व नहीं दिया; तत्-वाक्यम्—उसके (कंस के) वचनों पर; असत:—चरित्रविहीन; अविजित-आत्मन:—तथा आत्मसंयमविहीन।

**वसुदेव मान गये और वे अपना पुत्र घर वापस ले आए, किन्तु कंस चरित्रहीन तथा आत्मसंयमविहीन व्यक्ति था अतएव वसुदेव जानते थे कि कंस के शब्दों का कोई भरोसा नहीं।**

**नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ।**
**वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२॥**
**सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ।**
**ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३॥**

शब्दार्थ

नन्द-आद्याः—नन्द महाराज तथा अन्य लोग; ये—ये सभी; व्रजे—वृन्दावन में; गोपाः—ग्वाले; याः—जो; च—तथा; अमीषाम्—उन सबका ( वृन्दावनवासियों का ); च—भी; योषितः—स्त्रियाँ; वृष्णयः—वृष्णिवंश के सदस्य; वसुदेव-आद्याः—वसुदेव इत्यादि; देवकी-आद्याः—देवकी इत्यादि; यदु-स्त्रियः—यदुवंश की स्त्रियाँ; सर्वे—सभी; वै—निस्सन्देह; देवता-प्रायाः—स्वर्ग के निवासी थे; उभयोः—नन्द महाराज तथा वसुदेव दोनों के; अपि—निस्सन्देह; भारत—हे महाराज परीक्षित; ज्ञातयः—सम्बन्धीगण; बन्धु—सारे मित्र; सुहृदः—शुभेच्छु जन; ये—जो; च—तथा; कंसम् अनुव्रताः—कंस के अनुयायी होते हुए भी।.

**हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ, महाराज परीक्षित, नन्द महाराज तथा उनके संगी ग्वाले तथा उनकी स्त्रियाँ स्वर्गलोक की ही वासी थीं। इसी तरह वसुदेव आदि वृष्णिवंशी तथा देवकी एवं यदुवंश की अन्य स्त्रियाँ भी स्वर्गलोक की वासी थीं। नन्द महाराज तथा वसुदेव के मित्र, सम्बन्धी, शुभचिन्तक तथा ऊपर से कंस के अनुयायी लगने वाले व्यक्ति सभी देवता ही थे।**

**तात्पर्य :** जैसा पहले बतलाया जा चुका है, भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी को बतला दिया था कि धरती का कष्ट हरने के लिए कृष्ण स्वयं अवतरित होंगे। भगवान् ने स्वर्ग लोंको के समस्त निवासियों को आदेश दिया था कि वे यदु तथा वृष्णि वंश के विभिन्न परिवारों में तथा वृन्दावन में जाकर जन्म लें। इस श्लोक से पता चलता है कि यदुवंश, वृष्णिवंश, नन्द महाराज के सारे मित्र तथा गोप भगवान् की लीलाओं को देखने के लिए स्वर्गलोक से अवतरित हुए थे। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में पुष्टि की गई है भगवान् की लीलाओं में भक्तों की रक्षा करना तथा असुरों का वध करना सम्मिलित है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* इन लीलाओं के प्रदर्शनार्थ भगवान् ने ब्रह्माण्ड के विभिन्न भागों के भक्तों को बुलाया।

ऐसे अनेक भक्त हैं, जो स्वर्गलोक को भेजे जाते हैं।

*प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वती समाः।*

*शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥*

"असफल योगी अनेकानेक वर्षों तक पवित्र जीवों के लोकों में भोग करने के बाद पवित्र लोगों के परिवार में या किसी धनवान व्यक्ति के घर में जन्म लेता है (भगवद्गीता ६.४१)। कुछ भक्त अपनी भक्ति के विफल हो जाने पर उस स्वर्गलोक को भेजे जाते हैं जहाँ पुण्यात्मा जाते हैं और वहाँ पर भोग करने के बाद उन्हें उस स्थान को भेजा जा सकता है जहाँ भगवान् की लीलाएँ हो रही हों। जब कृष्ण को अवतीर्ण होना था, तो स्वर्गवासियों को भगवान् की लीलाएँ देखने के लिए आमंत्रित किया गया था इसीलिए यहाँ पर यह कहा गया है कि यदु तथा वृष्णिवंशी एवं वृन्दावन के निवासी देवता थे या देवताओं के ही तुल्य थे। यहाँ तक कि ऊपर ऊपर से कंस के कार्यकलापों की सहायता करने वाले भी स्वर्ग लोक से सम्बद्ध थे। वसुदेव को बन्दी बनाना और उनका छोड़ा जाना तथा विविध असुरों का वध—ये सब भगवान् की लीलाओं की अभिव्यक्तियाँ थीं और चूँकि भक्तगण इन लीलाओं को देखकर प्रसन्न होंगे इसलिए उन्हें इन परिवारों के मित्रों तथा सम्बन्धियों के रूप में जन्म लेने के लिए आमंत्रित किया गया था। कुन्ती की स्तुति (श्रीमद्भागवत १.८.१९) में पुष्टि की गई है *नटो नाटयधरो यथा।* भगवान् को असुर संहारक की और अपने भक्तों के मित्र, पुत्र तथा भाई की भूमिका अदा करनी थी इसीलिए इन सारे भक्तों को बुलाया गया था।

**एतत्कंसाय भगवाञ्छशंसाभ्येत्य नारदः ।**
**भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४॥**

शब्दार्थ

एतत्—यदु तथा वृष्णि वंशों के विषय में ये शब्द; कंसाय—कंस के लिए; भगवान्—परमेश्वर का अत्यन्त शक्तिशाली प्रतिनिधि; शशंस—सूचना दी (कंस को, जो संशय में था); अभ्येत्य—निकट जाकर; नारदः—नारद मुनि ने; भूमेः—भूमिपर; भारायमाणानाम्—जो भारस्वरूप हैं उनके; दैत्यानाम् च—तथा असुरों के; वध-उद्यमम्—वध करने का प्रयास।

**एक बार नारद मुनि कंस के पास गए और उसे यह बतलाया कि पृथ्वी के अत्यंत भारस्वरूप असुर व्यक्तियों का किस प्रकार वध किया जाने वाला है। इस तरह कंस अत्यधिक भय तथा संशय में पड़ गया।**

**तात्पर्य :** यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि माता पृथ्वी ने ब्रह्माजी से भारस्वरूप असुरों से उत्पन्न कष्ट से छुटकारा पाने के लिए याचना की थी और ब्रह्माजी ने उसे बतलाया कि साक्षात् कृष्ण अवतीर्ण होने वाले हैं। *भगवद्गीता* (४.८) में कृष्ण कहते हैं—

*परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।*

*धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥*

जब भी असुरों द्वारा भार उत्पन्न होता है और जब भी निर्दोष भक्तों को आसुरी शासक पीड़ित करते हैं, तो भगवान् समय आने पर अपने असली प्रतिनिधियों जो पारिभाषिक शब्द में देवता कहलाते हैं, की सहायता से असुरों का वध करने के लिए प्रकट होते हैं। उपनिषदों में कहा गया है कि देवतागण भगवान् के विभिन्न अंग हैं। जिस तरह शरीर के अंगों का पूरे शरीर की सेवा करना कर्तव्य है उसी तरह कृष्ण के भक्तों का कृष्ण की इच्छानुरूप उनकी सेवा करना कर्तव्य है। कृष्ण का कार्य है असुरों का वध करना अतएव भक्तों का भी यही कार्य होना चाहिए। किन्तु कलियुग के लोग पतित हैं अत: श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन पर कृपा करके उन्हें मारने के लिए कोई हथियार ग्रहण नहीं किया। प्रत्युत कृष्णभावनामृत (कृष्ण-प्रेम) का प्रसार करके उन्होंने उनके बुरे आसुरी कृत्यों को मारना चाहा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है। जब तक इस पृथ्वी के ऊपर से आसुरी कृत्यों का सफाया नहीं किया जाता तब तक कोई सुखी नहीं रह सकता। बद्धजीव के लिए पूरी योजना का वर्णन भगवद्गीता में किया गया है। मनुष्य को केवल उसका पालन करके सुखी बनना चाहिए। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है—

*हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।*

*कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥*

लोगों को चाहिए कि हरे कृष्ण मंत्र का निरन्तर कीर्तन करें। तभी उनकी आसुरी प्रवृत्तियाँ नष्ट होंगी और वे उत्तम भक्त बन सकेंगे तथा इस जीवन में तथा अगले जीवन में सुखी रह सकेंगे।

**ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ।**
**देवक्या गर्भसम्भूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥ ६५ ॥**
**देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ।**
**जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥ ६६ ॥**

शब्दार्थ

ऋषे:—नारद ऋषि के; विनिर्गमे—चले जाने पर; कंस:—कंस ने; यदून्—समस्त यदुवंशियों को; मत्वा—सोचकर; सुरान्—देवता के रूप में; इति—इस तरह; देवक्या:—देवकी के; गर्भ-सम्भूतम्—गर्भ से उत्पन्न संतानें; विष्णुम्—विष्णु के रूप में स्वीकार करते हुए; च—तथा; स्व-वधम् प्रति—विष्णु से अपनी मृत्यु के भय से; देवकीम्—देवकी को; वसुदेवम् च—तथा उसके पति वसुदेव को; निगृह्य—बन्दी बनाकर; निगडै:—लोहे की जंजीरों से; गृहे—घर पर ही; जातम् जातम्—एक के बाद एक उत्पन्न होने वाले; अहन्—मार डाला; पुत्रम्—पुत्रों को; तयो:—वसुदेव तथा देवकी के; अजन-शङ्कया—इस भय से कि वे विष्णु न हों।.

**नारद ऋषि के चले जाने पर कंस ने सोचा कि यदुवंश के सारे लोग देवता हैं और देवकी के गर्भ से जन्म लेने वाली कोई भी सन्तान विष्णु हो सकती है। अत: अपनी मृत्यु के भय से कंस ने वसुदेव तथा देवकी को बन्दी बना लिया और उनके लोहे की जंजीरें डाल दीं। कंस ने इस भविष्यवाणी से सशंकित होकर कि विष्णु उसका वध करेंगे, हर सन्तान को इस आशंका से कि वह कहीं विष्णु न हो, एक एक करके मार डाला।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील जीव गोस्वामी ने उल्लेख किया है कि नारद मुनि ने कंस को यह जानकारी कैसे दी। यह घटना 'हरिवंश' में वर्णित है। दैवयोग से नारद मुनि कंस को देखने गये तो कंस ने उनका स्वागत किया। इसलिए नारद ने उसे बतलाया कि देवकी का कोई एक पुत्र विष्णु होगा। चूँकि कंस का वध विष्णु द्वारा होना था इसलिए नारदमुनि ने सलाह दी कि देवकी के किसी भी पुत्र को जीवित न छोड़ा जाए। नारद का उद्देश्य था कि इन संतानों की हत्या करने से कंस के पापकर्म बढ़ेंगे जिससे शीघ्र ही उसे मारने के लिए कृष्ण अवतरित होंगे। नारदमुनि से आदेश पाकर कंस ने एक-एक करके देवकी के सारे पुत्रों को मार डाला।

*अजन-शंकया* शब्द सूचित करता है कि विष्णु कभी जन्म नहीं लेते ( *अजन* ) अत: कृष्ण के रूप में उन्होंने सामान्य मनुष्य की तरह जन्म लिया ( *मानुषीं तनुमाश्रितम्* )। कंस ने देवकी तथा वसुदेव से उत्पन्न सारे शिशुओं को मारने का प्रयास किया यद्यपि वह जानता था कि यदि विष्णु उत्पन्न हुए तो उनका वध नहीं हो सकता। वास्तव में हुआ भी ऐसा कि जब विष्णु कृष्ण के रूप में प्रकट हुए तो कंस उन्हें मार नहीं पाया; प्रत्युत भविष्यवाणी के अनुसार वह उन्हीं के द्वारा मारा गया। यह सच्चाई जान लेनी चाहिए कि कृष्ण का जन्म दिव्य विधि से होता है और वे असुरों को मारने के लिए लीला करते हैं, किन्तु उनका वध नहीं किया जा सकता। जब शास्त्रों के माध्यम से कृष्ण को इस तरह समझ लिया जाता है, तो मनुष्य अमर हो जाता है। भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.९) में कहा है—

*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:।*

*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥*

''हे अर्जुन! जो मेरे प्रादुर्भाव तथा कार्यों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक संसार में फिर से जन्म नहीं लेता अपितु मेरे धाम को प्राप्त होता है।''

**मातरं पितरं भ्रातृन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ।**
**घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजान: प्रायशो भुवि ॥ ६७॥**

शब्दार्थ

मातरम्—माता को; पितरम्—पिता को; भ्रातृन्—भाइयों को; सर्वान् च—सबको; सुहृद:—मित्रगण; तथा—भी; घ्नन्ति—मारते हैं; हि—निस्सन्देह; असु-तृप:—जो अपनी इन्द्रियों के लिए अन्यों से ईर्ष्या करते हैं; लुब्धा:—लालची; राजान:—ऐसे राजा; प्रायश:—प्राय:; भुवि—पृथ्वी पर।

**इस पृथ्वी पर इन्द्रियतृप्ति के लालची राजा प्राय: सदा अपने शत्रुओं का अंधाधुंध वध करते हैं। वे अपनी सनक की पूर्ति के लिए किसी का भी, यहाँ तक कि अपनी माता, पिता, भाइयों या मित्रों का भी वध कर सकते हैं।**

**तात्पर्य :** भारत के इतिहास में हम पाते हैं कि औरंगजेब ने अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने भाई तथा भतीजों को मार डाला और अपने पिता को बन्दी बना लिया। इस तरह के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं और कंस ऐसा ही राजा था। कंस को अपने भांजों को मारने तथा अपनी बहन तथा पिता को बन्दी बनाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं हुई। असुरों के लिए ऐसे कार्य करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। यद्यपि कंस असुर था, किन्तु उसे पता था कि विष्णु का वध नहीं किया जा सकता और इस तरह उसे मोक्ष प्राप्त हुआ। भगवान् विष्णु के कार्यों की थोड़ी सी भी जानकारी से मोक्ष मिल सकता है। कंस कृष्ण के विषय में थोड़ा-बहुत जानता था कि उनका वध नहीं किया जा सकता अत: विष्णु या कृष्ण को अपना शत्रु मानते हुए भी उसे मोक्ष मिल सका। भला जो व्यक्ति *भगवद्गीता* जैसे शास्त्रों के विवरणों द्वारा कृष्ण को पूरी तरह जानता है उसके बारे में क्या कहा जाए? अत: हर एक का कर्तव्य है कि वह *भगवद्गीता* पढ़े और कृष्ण को पूरी तरह समझे। इससे उसका जीवन सफल हो सकेगा।

**आत्मानमिह सञ्जातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ।**
**महासुरं कालनेमिं यदुभि: स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥**

शब्दार्थ

आत्मानम्—स्वयं; इह—इस संसार में; सञ्जातम्—पुन: जन्म लेकर; जानन्—भलीभाँति जानते हुए; प्राक्—इस जन्म के पूर्व; विष्णुना—भगवान् विष्णु द्वारा; हतम्—मारा गया था; महा-असुरम्—बड़े असुर; कालनेमिम्—कालनेमि को; यदुभि:—यदुवंश के सदस्यों के साथ; स:—उस ( कंस ) ने; व्यरुध्यत—शत्रुवत् व्यवहार किया।

**पूर्व जन्म में कंस कालनेमि नाम का महान् असुर था और विष्णु द्वारा मारा गया था। नारद से**

**यह जानकर कंस यदुवंश से सम्बन्धित हर किसी से द्वेष करने लगा।**

**तात्पर्य :** जो व्यक्ति राक्षस होते हैं और भगवान् के शत्रु होते हैं, वे *असुर* कहलाते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है कि भगवान् के प्रति शत्रुता के कारण असुरगण जन्म-जन्मांतर असुर परिवारों में जन्म लेते हैं और घोर अंधकारमय नरक को जाते हैं।

**उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ।**
**स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबल: ॥ ६९ ॥**

शब्दार्थ

उग्रसेनम्—उग्रसेन को; च—तथा; पितरम्—अपने पिता को; यदु—यदुवंशी; भोज—भोजवंशी; अन्धक—अन्धकवंशी; अधिपम्—राजा को; स्वयम्—स्वयं; निगृह्य—दमन करके; बुभुजे—भोग किया; शूरसेनान्—शूरसेन कहलाने वाले समस्त राज्य; महा-बल:—अत्यन्त बलशाली कंस ने।

**उग्रसेन के अत्यन्त बलशाली पुत्र कंस ने अपने पिता तक को, जो यदु, भोज तथा अंधक वंशों का राजा था, बन्दी बना लिया और शूरसेन नामक राज्यों का शासन स्वयं चलाने लगा।**

**तात्पर्य :** शूरसेन नामक राज्यों के अन्तर्गत मथुरा भी सम्मिलित था।

इस अध्याय के लिए अतिरिक्त टिप्पणियाँ

आत्मा के देहान्तरण के विषय में श्रील मध्वाचार्य ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ दी हैं। जब मनुष्य जगा रहता है, तो वह जो कुछ देखता या सुनता है उसका अंकन मन पर होता रहता है, जो बाद में स्वप्न में भिन्न अनुभव दर्शाता है यद्यपि स्वप्न में मनुष्य भिन्न शरीर में प्रकट-सा होता है। उदाहरणार्थ, जब मनुष्य जगा रहता है, तो वह कामकाज करता है और ग्राहकों से बातें करता है। इसी तरह स्वप्न में भी कई ग्राहकों से मिलता है, उनसे व्यापार की बातें करता है और चीजों के मूल्य बताता है। इसलिए मध्वाचार्य कहते हैं कि मनुष्य जो भी देखता, सुनता और स्मरण करता है उसी के हिसाब से स्वप्न देखता है। किन्तु जब वह फिर जग जाता है, तो स्वप्न के शरीर को भूल जाता है। यह विस्मरण *अपस्मृति* कहलाती है। इस तरह हम शरीर बदलते रहते हैं क्योंकि कभी हम सपना देखते हैं, तो कभी जगे रहते हैं और कभी भूल जाते हैं। अपने पूर्वसृजित शरीर की विस्मृति मृत्यु कहलाती है और वर्तमान देह में किया जाने वाला कार्य जीवन कहलाता है। मृत्यु के बाद कोई अपने पूर्व शरीर के कार्यों को स्मरण नहीं रख सकता चाहे वे काल्पनिक हों या वास्तविक।

उत्तेजित मन की उपमा क्षुब्ध जल से दी जाती है, जो सूर्य और चन्द्रमा को प्रतिबिम्बित करता है।

वास्तव में जल में प्रतिबिम्बित सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व नहीं रहता फिर भी जल की गतियों के अनुसार उनका प्रतिबिम्ब पड़ता रहता है। इसी तरह जब हमारे मन विक्षुब्ध रहते हैं, तो हम विभिन्न भौतिक परिवेशों में विचरण करते हैं और तरह-तरह के शरीर प्राप्त करते हैं। *भगवद्गीता* में इसे *गुण-सङ्ग* कहा गया है। *कारणं गुण-संगोऽस्य।* मध्वाचार्य का कथन है—*गुणानुबद्धःसन्।* और श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—*ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव* (*चैतन्य-चरितामृत* १९.१५१)। जीव ब्रह्माण्ड भर में चक्कर लगाता रहता है कभी स्वर्गलोक में तो कभी मध्यलोक और निम्नलोकों में, कभी मनुष्य रूप में तो कभी देवता, कुत्ता, वृक्ष इत्यादि के रूप में। यह मन की चंचलता के कारण है। इसलिए मन को स्थिर बनाना चाहिए। जैसाकि कहा जाता है—*स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः।* मनुष्य को चाहिए कि वह कृष्ण के चरणकमलों में मन को स्थिर करे। तब वह चंचलता से छुटकारा पा सकता है। यह *गरुड़ पुराण* का उपदेश है और *नारदीय पुराण* में भी यही बात दुहराई गई है। *भगवद्गीता* में *यान्ति देवव्रता देवान्* कहा गया है। चंचल मन विभिन्न लोकों को चला जाता है क्योंकि वह भिन्न-भिन्न देवताओं के प्रति अनुरक्त रहता है। किन्तु इन देवताओं की पूजा करके वह भगवद्धाम नहीं जा सकता क्योंकि किसी भी वैदिक साहित्य द्वारा इसकी पुष्टि नहीं होती। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता होता है। इस मनुष्य जीवन में उसे यह सुविधा प्राप्त है कि वह अपनी वास्तविक स्थिति को समझे और यह निर्धारित करे कि उसे ब्रह्माण्ड भर में निरन्तर चक्कर लगाते रहना है अथवा भगवद्धाम लौट जाना है। *भगवद्गीता* में इसकी भी पुष्टि हुई है (*अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि*)।

संयोग नाम की कोई वस्तु नहीं है। यदि दावाग्नि से कोई वृक्ष जल रहा हो और दूर के वृक्ष में आग लग जाए, किन्तु पास का वृक्ष बच जाए तो यह संयोग जैसा लगता है। इसी तरह मनुष्य को संयोगवश विभिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त होते दिखते हैं, किन्तु वास्तव में उसे ये शरीर मन के कारण प्राप्त होते हैं। मन स्वीकृति और अस्वीकृति के बीच दोलायमान रहता है और मन द्वारा इस स्वीकृति-अस्वीकृति के अनुसार ही हमें विभिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त होते हैं यद्यपि ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि संयोगवश ही ऐसा होता है। यदि हम इस संयोग-सिद्धान्त को मान भी लें तो शरीर परिवर्तन होने का तात्कालिक कारण मन की चंचलता होगी।

*अंश के सम्बन्ध में टिप्पणी*—इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि कृष्ण *अंशेन* अर्थात् अपने अंशों

के साथ या आंशिक अभिव्यक्ति के साथ प्रकट हुए। इस सम्बन्ध में श्रीधर स्वामी कहते हैं कि कृष्ण शत प्रतिशत भगवान् हैं (*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*)। यह तो हमारी अपूर्णता है कि हम कृष्ण को पूर्णरूपेण समझ नहीं पाते अत: इस धरा पर उपस्थित होकर कृष्ण ने जो कुछ भी प्रदर्शित किया वह उनके ऐश्वर्य की आंशिक अभिव्यक्ति थी। पुन: कृष्ण अपने स्वांश बलदेव के साथ प्रकट हुए। फिर भी कृष्ण पूर्ण हैं। उनके अंश रूप में प्रकट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। *वैष्णव तोषणी* में श्रील सनातन गोस्वामी कहते हैं कि यदि हम यह मान लें कि कृष्ण अंश रूप में प्रकट हुए तो *कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*—यह कथन झूठा पड़ जाएगा। श्रील जीव गोस्वामी का कथन है कि *अंशेन* शब्द का अर्थ यह है कि कृष्ण अपने समस्त स्वांशों समेत प्रकट हुए। *अंशेन विष्णो:* शब्दों का अर्थ यह नहीं है कि कृष्ण भगवान् विष्णु के आंशिक प्रतिनिधि हैं प्रत्युत कृष्ण पूर्ण रूप में प्रकट हुए और वे वैकुण्ठ लोकों में अंशत: प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् विष्णु कृष्ण की आंशिक अभिव्यक्ति हैं, कृष्ण उनके नहीं। *चैतन्य-चरितामृत* (आदि. अध्याय ४) में इसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की भी टिप्पणी है कि कृष्ण का पूर्णतया वर्णन नहीं किया जा सकता। *श्रीमद्भागवत* में जो भी वर्णन मिलता है, वह कृष्ण का आंशिक विवेचन है। सारांश यह है कि *अंशेन* शब्द सूचित करता है कि भगवान् विष्णु कृष्ण की आंशिक अभिव्यक्ति हैं न कि कृष्ण विष्णु की।

श्रील सनातन गोस्वामी ने *वैष्णव तोषणी* में *धर्मशीलस्य* शब्द की व्याख्या की है। *धर्मशील* का असली अर्थ है ''विशुद्ध भक्त।'' असली *धर्म* तो पूर्णतया भगवान् कृष्ण की शरण में जाना है (*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*)। जो पूर्णतया कृष्ण की शरणागत है, वही वास्तव में धर्मशील है। ऐसे ही धर्मशील थे महाराज परीक्षित। जो भी व्यक्ति अन्य सारे धर्मों को त्यागकर भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने के सिद्धान्त का पालन करता है, वही वास्तविक धर्मशील है।

*निवृत्त-तर्षे* शब्द द्योतक है ऐसे व्यक्ति का जो सारी भौतिक इच्छाओं से रहित है (*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तम्*)। इस भौतिक जगत के कल्मष के कारण मनुष्य में नाना प्रकार की भौतिक इच्छाएँ हो सकती हैं, किन्तु जब वह सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, तो उसे *निवृत्त-तृष्ण* कहते हैं जिसका अर्थ है कि वह भौतिक तृप्ति के लिए अब कोई तृष्णा नहीं रखता। *स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे* (*हरिभक्ति सुधोदय*)। भौतिकतावादी व्यक्ति भक्ति सम्पन्न करने के बदले में

कुछ भौतिक लाभ चाहते हैं, किन्तु भक्ति का उद्देश्य यह नहीं है। भक्ति की पूर्णता तो कृष्ण के चरणकमलों में बिना भौतिक इच्छाओं के समर्पण है। जो इस प्रकार शरणागत होता है, वह पहले से मुक्त होता है। *जीवन्मुक्त: स उच्यते।* जो व्यक्ति, चाहे किसी भी स्थिति में क्यों न रहे सदैव कृष्ण की सेवा में लगा रहता है, वह इसी जीवन में ही मुक्त हुआ माना जाता है। ऐसा व्यक्ति शुद्ध भक्त होता है और उसे अपना शरीर बदलने की आवश्यकता नहीं होती। निस्सन्देह उसका भौतिक शरीर रहता ही नहीं क्योंकि उसका शरीर पहले ही आध्यात्मिक बन चुका होता है। आग में रखा लोहे का डंडा अन्तत: आग बन जाता है और वह जिसे भी छूता है, वह जल जाता है। इसी प्रकार शुद्ध भक्त आध्यात्मिक जगत रूपी अग्नि में रहता है, अत: उसका शरीर चिन्मय अर्थात् आध्यात्मिक, न कि भौतिक, होता है क्योंकि शुद्ध भक्त को भगवान् की दिव्य सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा नहीं सताती। चतुर्थ श्लोक में *उपगीयमानात्* शब्द प्रयुक्त हुआ है—*निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्।* भला भक्त हुए बिना भगवान् की महिमा का कीर्तन कौन करेगा? अत: *निवृत्त-तर्षै* शब्द भक्त का ही सूचक है और किसी का नहीं। वीरराघव आचार्य तथा विजयध्वज जैसे आचार्यों का यही मत है। भक्ति के बजाय किसी और की इच्छा करना भौतिक इच्छाओं से मुक्ति को कम कर देगा किन्तु जब कोई ऐसी सभी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, तो वह निवृत्त-तर्षै कहलाता है।

*विना पशुघ्नात् पशुघ्न* अर्थात् पशु का वध करने वाले को कभी भी कृष्णभावनामृत प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में पशु-वध का पूर्ण निषेध है।

*उत्तमश्लोक-गुणानुवादात् उत्तमश्लोक* का अर्थ है "उत्तमों में सर्वश्रेष्ठ।" भगवान् सभी परिस्थितियों में उत्तम हैं। यही उनकी सहज ख्याति है। उनकी अच्छाई (उत्तमता) असीम है और वे इसका उपयोग असीमित रूप में करते हैं। कभी-कभी भक्त को भी उत्तमश्लोक कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है कि वह भगवान् या भगवान् के भक्तों का गुणानुवाद करने के लिए उत्सुक रहता है। भगवान् का गुणानुवाद तथा भगवान् के भक्तों का गुणानुवाद एक है। अथवा भक्त का गुणानुवाद भगवान् के प्रत्यक्ष गुणानुवाद से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। नरोत्तमदास ठाकुर ने इस तथ्य की व्याख्या की है—*छाड़िया वैष्णवसेवा, निस्तार पायेछे केबा।* कृष्ण भक्त की सच्चे मन से सेवा किए बिना मनुष्य भवजाल से मुक्त नहीं हो सकता।

*भवौषधात्* शब्द का अर्थ है, "विश्व औषधि से।" नाम कीर्तन तथा भगवान् का गुणानुवाद ये भौतिकतावादी जीवन के कष्टों की रामबाण औषधियाँ हैं। जो लोग इस भौतिक जगत से मुक्त होना चाहते हैं, वे *मुमुक्षु* कहलाते हैं। ऐसे लोग भौतिकतावादी जीवन के कष्टों को समझते हैं और वे भगवान् के कार्यकलापों का गुणानुवाद करके इन कष्टों से छुटकारा पा सकते हैं। भगवान् के नाम, यश, रूप, गुण तथा साज-सामान विषयक दिव्य ध्वनियाँ भगवान् से अभिन्न होती हैं। इसलिए भगवान् के गुणानुवाद और नाम की ध्वनि कानों को आनन्ददायी लगती हैं और भक्त भगवान् के नाम, रूप तथा गुण की परम प्रकृति को समझकर हर्षित होता है। यहाँ तक कि जो भक्त नहीं हैं, वे भी भगवान् के दिव्य कार्यकलापों की मोहक कथाओं का आनन्द लेते हैं। यहाँ तक कि ऐसे सामान्य व्यक्ति जो कृष्णभावनामृत में बढ़े-चढ़े नहीं होते वे *श्रीमद्भागवत* में अंकित कथाओं के वर्णन में आनन्द प्राप्त करते हैं। जब कोई भौतिकतावादी व्यक्ति इस तरह से शुद्ध हो जाता है, तो वह भगवान् की महिमा सुनने और कीर्तन करने में लग जाता है। चूँकि भगवान् की लीलाओं का गुणानुवाद भक्त के कानों तथा हृदय के लिए अत्यन्त मोहक होता है, अत: यह विषय एवं विषयी दोनों बन जाता है।

इस जगत में तीन प्रकार के लोग हैं मुक्त, मुमुक्षु तथा इन्द्रियभोग में लिप्त। इन तीनों में से मुक्त लोग भगवान् के नाम का कीर्तन तथा श्रवण करते हैं क्योंकि वे भलीभाँति जानते हैं कि केवल भगवान् के गुणानुवाद से ही दिव्य पद पर रहा जा सकता है। दूसरी प्रकार के लोग जो मुक्ति पाने का प्रयास कर रहे हैं भगवन्नाम कीर्तन तथा श्रवण को मुक्ति की विधि मानते हैं अत: उन्हें भी इस कीर्तन में दिव्य आनन्द मिलता है। जहाँ तक कर्मियों तथा विषयी लोगों की बात है वे भी भगवान् की लीलाओं यथा कुरुक्षेत्र में भगवान् द्वारा युद्ध करने तथा वृन्दावन में गोपियों के साथ नृत्य को सुनने में आनन्द ले सकते हैं।

*उत्तमश्लोकगुणानुवाद* शब्द भगवान् के दिव्य गुणों का द्योतक है यथा माता यशोदा तथा ग्वालों के प्रति उनका स्नेह तथा गोपियों के प्रति प्रेमभाव। भगवान् के भक्तों को भी उत्तमश्लोकगुणानुवाद की पदवी दी जाती है यथा महाराज युधिष्ठिर को। *अनुवाद* शब्द भगवान् या उनके भक्तों के गुणों के वर्णन का सूचक है। जब इन गुणों का वर्णन किया जाता है, तो अन्य भक्त भी उन्हें सुनने में रुचि दिखलाते हैं। जो इन दिव्य गुणों को सुनने में जितनी अधिक रुचि लेता है उसे उतना ही आनन्द प्राप्त होता है।

इसलिए *मुमुक्षों, विमुक्तों* तथा *कर्मियों* समेत हर एक को भगवान् की महिमा का कीर्तन और श्रवण करके लाभान्वित होना चाहिए।

यद्यपि भगवान् के दिव्य गुणों की ध्वनि सबको समान रूप से लाभप्रद होती है, किन्तु जो *मुक्त* हैं उन्हें यह विशेष रूप से प्रिय है। *श्रीमद्भागवत* (८.३.२०) में बतलाया गया है कि शुद्ध भक्त जिनकी भौतिक इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं और जो भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर लेते हैं, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन एवं श्रवण करके आनन्दसागर में निरन्तर मग्न रहते हैं। इस श्लोक के अनुसार नारद तथा श्वेतद्वीप के अन्य निवासियों जैसे भक्त सदैव भगवन्नाम का कीर्तन करते देखे जाते हैं क्योंकि ऐसा करने से वे ब्राह्यत: तथा आन्तरिक रूप से आनन्दित रहते हैं। मुमुक्षगण जो मुक्त होना चाहते हैं, इन्द्रियों के सुख पर आश्रित नहीं रहते अपितु भगवन्नाम कीर्तन करके मुक्त होने पर ध्यान लगाए रहते हैं। कर्मीजन अपने कानों तथा हृदयों को अच्छे लगने वाले कार्य करना चाहते हैं, किन्तु कभी-कभी वे भी भगवान् का गुणानुवाद करना-सुनना चाहते हैं फिर भी वे इसे प्रत्यक्ष रूप में नहीं करते। किन्तु भक्तगण सदैव भगवान् के कार्यों का श्रवण, कीर्तन और स्मरण स्वेच्छा से करते हैं और इस तरह वे पूर्णत: सन्तुष्ट रहते हैं भले ही ये इन्द्रियतृप्ति के विषय दिखाई दें। परीक्षित महाराज तो भगवान् के कार्यकलापों की दिव्य कथाएँ सुनने मात्र से मुक्त हो गए। अत: वे *श्रोत्रमनोऽभिराम* थे अर्थात् उन्होंने श्रवण विधि को अपनाया। सारे जीवों को यही विधि अपनानी चाहिए।

इन दिव्य आनन्दों से विहीन व्यक्तियों को पृथक् करने के लिए परीक्षित महाराज ने *विरज्येत पुमान्* शब्दों का प्रयोग किया है। *पुमान्* किसी भी व्यक्ति का चाहे नर हो या नारी या इन दोनों के बीच का, सूचक है। देहात्मबुद्धि के कारण हम शोक करते हैं, किन्तु देहात्मबुद्धि से रहित व्यक्ति आध्यात्मिक श्रवण तथा कीर्तन में आनन्द का अनुभव करता है। इसलिए देहात्मबुद्धि में मग्न व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति न कर सकने के कारण निश्चय ही अपने आपको मारता रहता है। ऐसा व्यक्ति *पशुघ्न* कहलाता है। पशुओं के शिकारी(आखेटक) जो भगवान् के पवित्र नाम के श्रवण और कीर्तन में रुचि नहीं रखते, आध्यात्मिक जीवन से विलग रहते हैं। ऐसे आखेटक इस जीवन में और अगले जीवन में भी सदैव दुखी रहते हैं। इसीलिए कहा गया है कि आखेटक को न तो मरना चाहिए न ही जीवित रहना चाहिए क्योंकि मरना तथा जीना दोनों ही उसके लिए कष्टकारक होते हैं। ये पशु आखेटक सामान्य

कर्मियों से सर्वथा भिन्न होते हैं इसीलिए इन्हें श्रवण तथा कीर्तन विधि में सम्मिलित नहीं किया जाता। *विना पशुघ्नात्।* उन्हें भगवन्नाम के कीर्तन और श्रवण में कोई दिव्य आनन्द नहीं मिलता।

*महारथ* शब्द उस महावीर का सूचक है, जो ११,००० अन्य योद्धाओं से अकेले लड़ सकता है। श्लोक ५ में आया *अतिरथ* शब्द ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो असंख्य योद्धाओं से लड़ सकता है। *महाभारत* में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

*एकादशोसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम्*

*अस्त्रशस्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः*

*अमितान् योधयेद्यस्तु सम्प्रोक्तोऽतिरथस्तु सः॥*

श्रील सनातन गोस्वामी ने *वृहद् वैष्णवतोषणी* में यह विवरण दिया है।

*माया-मनुष्यस्य* (१०.१.१७)। योगमाया द्वारा आवृत होने के कारण (*नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः*) कृष्ण कभी-कभी *मायामनुष्य* कहलाते हैं, जो यह बतलाता है कि भगवान् होते हुए भी वे सामान्य मनुष्य की तरह प्रकट होते हैं। चूँकि जनता की दृष्टि पर योगमाया का पर्दा पड़ा रहता है इसीलिए भ्रम उत्पन्न होता है। यद्यपि भगवान् सामान्य व्यक्ति की तरह उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनका पद सामान्य व्यक्ति से सर्वथा भिन्न होता है। वे सदैव दिव्य हैं। *माया* शब्द कभी ''दया'' तो कभी ''ज्ञान'' को सूचित करता है। भगवान् समस्त दिव्य ज्ञान से पूर्ण रहते हैं अतएव मनुष्य की भाँति कर्म करते हुए भी वे ज्ञान से पूर्ण भगवान् होते हैं। उनका मूल स्वरूप माया के अधीक्षक (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*) के रूप में होता है। इसीलिए भगवान् को एक सामान्य मनुष्य की भाँति कार्य करने के कारण *मायामनुष्य* कहा जा सकता है यद्यपि वे भौतिक और आध्यात्मिक दोनों शक्तियों के नियन्ता हैं। भगवान् पुरुषोत्तम हैं, किन्तु योगमाया द्वारा हमारे छले जाने के कारण वे सामान्य व्यक्ति की तरह प्रकट होते हैं। किन्तु अन्ततोगत्वा योगमाया अभक्त को भी प्रेरित करती है कि वह परम पुरुष को पुरुषोत्तम रूप में समझे। *भगवद्गीता* में भगवान् के दो कथन प्राप्य हैं। भक्तों के विषय में उनका कथन है—

*तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।*

*ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥*

"जो लोग निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं बुद्धि प्रदान करता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकें।" *भगवद्गीता* १०.१०)। इस तरह चाहने वाले भक्त को भगवान् बुद्धि देते हैं जिससे वह उन्हें समझ सके और भगवद्धाम वापस जासके। अभक्तों के लिए भगवान् का कथन है—*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*—मैं सब कुछ हरण करने वाली अनिवार्य मृत्यु हूँ। प्रह्लाद जैसा भक्त भगवान् नृसिंहदेव के कार्यकलापों में आनन्द पाता है और प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु जैसा अभक्त भगवान् नृसिंह के समक्ष मृत्यु को प्राप्त होता है। इसलिए भगवान् दो तरह से कार्य करते हैं कुछ को तो वे जन्म-मरण के चक्र में डाल देते हैं और कुछ को भगवद्धाम वापस भेज देते हैं।

*काल* शब्द का अर्थ "काला" है, जो भगवान् कृष्ण के रंग का सूचक है। भगवान् कृष्ण तथा रामचन्द्र दोनों ही श्याम रंग के दिखते हैं। वे अपने भक्तों को मुक्ति तथा दिव्य आनन्द प्रदान करते हैं। भौतिक शरीर धारण करने वाले कुछ व्यक्ति कभी-कभी इच्छामृत्यु भोगते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए मृत्यु असम्भव है क्योंकि कोई भी मरना नहीं चाहता। यद्यपि भीष्मदेव में यह शक्ति थी, किन्तु भगवान् की परम इच्छा से वे भगवान् के समक्ष बड़ी ही आसानी से मर गए। ऐसे अनेक असुर भी हो चुके हैं, जिन्हें मोक्ष की कोई आशा नहीं थी फिर भी भगवान् की परम इच्छा से कंस को मोक्ष मिला। कंस ही नहीं, पूतना को भी मोक्ष मिला और वह भगवान् की माता के समान पद प्राप्त कर सकी। इसीलिए परीक्षित महाराज उन भगवान् के विषय में सुनने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे, जो अपने अचिन्त्य गुणों के द्वारा किसी को भी मुक्ति प्रदान कर सकते हैं। अपनी मृत्यु के निकट परीक्षित महाराज निश्चय ही अपनी मुक्ति के विषय में उत्सुक थे। जब भगवान् जैसा महान् मनुष्य अचिन्त्य गुणों से सम्पन्न होकर सामान्य मनुष्य की तरह व्यवहार करता है, तो उसका वह व्यवहार *माया* कहलाता है। इसीलिए भगवान् को *मायामनुष्य* कहा गया है। यह श्रील जीव गोस्वामी का मत है। *मु* सूचक है *मुक्ति* का और *कु* बुरे अर्थ में आता है। अतः *मुकु* भगवान् का सूचक है, जो मनुष्य को भौतिक संसार की बुरी स्थिति से बचाता है। भगवान् को *मुकुन्द* इसीलिए कहा गया है क्योंकि वे भक्त को न केवल भौतिक संसार से बचाते हैं अपितु उसे सेवा में दिव्य प्रेममय आनन्द प्रदान करते हैं।

*केशव* (क+ईश) में *क* का अर्थ है ब्रह्मा तथा *ईश* का अर्थ है शिवजी। भगवान् अपने दिव्य गुणों से ब्रह्मा तथा शिव दोनों का मन मोह लेते हैं इसीलिए वे केशव कहलाते हैं। यह मत श्रील सनातन

गोस्वामी ने ''वैष्णव तोषणी'' टीका में व्यक्त किया है।

कहा जाता है कि त्रिनयन अर्थात् शिव समेत सारे देवता क्षीर सागर के तट पर गए और *पुरुष-सूक्त* मंत्र द्वारा विष्णु की स्तुति की। इस कथन से पता चलता है कि देवता न तो क्षीरशायी विष्णु के पास सीधे जा सकते हैं न उनके धाम में प्रवेश कर सकते हैं। *महाभारत* के *मोक्षधर्म* तथा *श्रीमद्भागवत* के अगले अध्याय में भी यह स्पष्ट कहा गया है : भगवान् कृष्ण का धाम गोलोक में है ( *गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य* )। भगवान् कृष्ण से उत्पन्न है चतुर्व्यूहसंकर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा वासुदेव। ब्रह्माण्डों की संख्या अनन्त है और वे सब कारणोदकशायी विष्णु के रोमकूपों से उद्भूत होते हैं और हर ब्रह्माण्ड में एक गर्भोदकशायी विष्णु होता है, जो अनिरुद्ध का आंशिक विस्तार होता है। अनिरुद्ध अंश हैं प्रद्युम्न के, जो आंशिक क्षीरोदकशायी विष्णु हैं और सारे जीवों में परमात्मा के रूप में हैं। ये विष्णु अंश उन कृष्ण से भिन्न हैं, जो गोलोक वृन्दावन में निवास करते हैं। जब यह कहा जाता है कि देवताओं ने पुरुष सूक्त द्वारा भगवान् की स्तुति की तो इसका यही अर्थ होता है कि उन्होंने भक्तिमयी स्तुतियों के द्वारा भगवान् को प्रसन्न किया।

*वृषाकपि* शब्द उस व्यक्ति का सूचक है, जो अपने भक्तों को हर तरह से तुष्ट करता है और उन्हें सारी भौतिक चिन्ताओं से मुक्त करता है। *वृष* यज्ञ जैसे धार्मिक कृत्यों का सूचक है। भगवान् यज्ञ किए बिना ही स्वर्ग के सारे भोग प्राप्त कर सकते हैं। यह कथन कि पुरुषोत्तम या जगन्नाथ वसुदेव के घर में प्रकट होंगे, भगवान् को सामान्य पुरुषों से विभेदित करता है। उनका कथन कि वे स्वयं प्रकट हुए यह बतलाता है कि उन्होंने अपने अंश को नहीं भेजा। *प्रियार्थम्* शब्द सूचित करता है कि वे रुक्मिणी तथा राधारानी को प्रसन्न करने के लिए प्रकट हुए। *प्रिया* का अर्थ है, ''सर्वाधिक प्रिय।''

श्री वीरराघव आचार्य ने अपनी टीका में श्लोक २३ के बाद निम्नलिखित अतिरिक्त श्लोक स्वीकार किया है—

*ऋषयोऽपि तदादेशात् कल्पयन्तां पशुरूपिण: ।*

*पयोदानमुखेनापि विष्णुं तर्पयितुं सुरा: ॥*

''हे देवताओ! बड़े-बड़े मुनि तक विष्णु का आदेश पाकर भगवान् को दूध देकर प्रसन्न करने के लिए गौवों तथा बछड़ों के रूप में प्रकट हुए।''

रामानुजाचार्य कभी-कभी बलदेव को *शक्त्यावेश अवतार* स्वीकार करते हैं, किन्तु श्रील जीव गोस्वामी ने बतलाया है कि बलदेव कृष्ण के अंश हैं और बलदेव के भी अंश हैं संकर्षण। यद्यपि बलदेव तथा संकर्षण अभिन्न हैं, किन्तु बलदेव संकर्षण के उद्‌गम हैं। इसीलिए यह बताने के लिए कि बलदेव की स्वतंत्र सत्ता है, *स्वराट्* शब्द प्रयुक्त हुआ है। *स्वराट्* शब्द यह भी सूचित करता है कि बलदेव इस संसार की भौतिक कल्पना से परे हैं। माया उन्हें आकृष्ट नहीं कर सकती क्योंकि वे पूर्ण स्वतंत्र हैं और वे कहीं भी अपनी आत्मशक्ति से प्रकट हो सकते हैं। माया विष्णु के अधीन है। चूँकि भौतिक शक्ति तथा योगमाया भगवान् के प्राकट्य में घुलमिल जाती हैं अतः उन्हें *एकानंशा* कहा गया है। कभी-कभी *एकानंशा* का अर्थ ''बिना अन्तर'' लगाया जाता है। संकर्षण तथा शेषनाग अभिन्न हैं। यमुना देवी ने कहा है, ''हे राम, हे संसार के महाभुज स्वामी! आपने अपने एक स्वांश से अपने को सारे विश्व में फैला दिया है। भला आपको कौन पूरी तरह समझ सकता है।'' इसलिए *एकांशा* शेषनाग का द्योतक है। दूसरे शब्दों में, बलदेव अपने अंश से सारे विश्व को धारण करते हैं।

*कार्यार्थे* शब्द उस व्यक्ति का द्योतक है, जिसने देवकी के गर्भ को आकृष्ट किया तथा यशोदा माता को मोहित किया। ये लीलाएँ परम गुह्य हैं। भगवान् ने योगमाया को आदेश दिया कि वह उनके संगियों को लीलाओं में और कंस जैसे असुर को मोहित करे। जैसाकि पहले कहा जा चुका है—*योगमायां समादिशत्।* भगवान् की सेवा करने के लिए योगमाया महामाया के साथ प्रकट हुई। *महामाया* द्योतक है *यया सम्मोहितं जगत्*—''जो सारे भौतिक जगत को मोहित करने वाली है।'' इस कथन से यह समझना चाहिए कि योगमाया अपने अंश रूप में महामाया बनती है और सारे बद्धजीवों को मोहती है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण सृष्टि के दो विभाग हैं दिव्य या आध्यात्मिक तथा भौतिक। योगमाया आध्यात्मिक जगत की व्यवस्था करती हैं और वह अपने अंश महामाया के रूप में इस भौतिक जगत का भार संभालती हैं। जैसा *नारद पञ्चरात्र* में कहा गया है महामाया अंश है योगमाया का। उस ग्रंथ में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् के केवल एक शक्ति होती है, जो कभी-कभी दुर्गा कहलाती है। *ब्रह्म-संहिता* कहती है—*छायेव यस्य भुवनानिबिभर्ति दुर्गा।* दुर्गा योगमाया से भिन्न नहीं है। दुर्गा को भलीभाँति जान लेने पर मनुष्य तुरन्त ही मुक्त हो जाता है क्योंकि दुर्गा आदि ह्लादिनी शक्ति है, जिसकी कृपा से भगवान् को बहुत आसानी से जाना जा सकता है। *राधाकृष्ण प्रणयविकृतिर्ह्लादिनीशक्तिरस्माद्।*

महामाया शक्ति योगमाया की आवरण है इसीलिए उसे आवृता शक्ति कहा गया है। इसी आवृता शक्ति से सारा भौतिक जगत मोहित है (*यया सम्मोहितं जगत्*)। निष्कर्ष यह निकला कि बद्धजीवों को मोहित करना तथा भक्तों को मुक्ति देना ये दोनों कार्य योगमाया के हैं। देवकी के गर्भ का स्थानान्तरण और यशोदा को गहरी निद्रा में रखना ये दोनों कार्य योगमाया द्वारा किए गए। महामाया ऐसे भक्तों पर अपना असर नहीं दिखा सकती क्योंकि वे सदैव मुक्त रहते हैं। यद्यपि महामाया मुक्तात्माओं या भगवान् को अपने वश में नहीं कर सकती, किन्तु कंस को मोहित किया ही। योगमाया का स्वयं को कंस के सामने प्रस्तुत करना महामाया का कार्य था, योगमाया का नहीं। योगमाया कंस जैसे दूषित व्यक्ति को देख या छू भी नहीं सकती। *मार्कण्डेय पुराण* में चण्डी नामक ग्यारहवें अध्याय में महामाया कहती हैं, ''वैवस्वत मनु के काल में अट्ठाइसवें युग में मैं यशोदा की पुत्री के रूप में जन्म लूँगी और विन्ध्याचलवासिनी के नाम से जानी जाऊँगी।''

इन दोनों मायाओं, योगमाया तथा महामाया का अन्तर इस प्रकार बतलाया जाता है। गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीला करना तथा गोपियों द्वारा अपने पतियों, ससुरों तथा अन्य सम्बन्धियों से संभ्रमित होना ये सब योगमाया के काम थे जिनमें महामाया का कोई प्रभाव नहीं था। *श्रीमद्‌भागवत* में इसका पर्याप्त प्रमाण मिलता है जब यह स्पष्ट कहा जाता है *योगमायामुपाश्रित:।* दूसरी ओर साल्व आदि असुर तथा दुर्योधन जैसे क्षत्रिय थे, जो कृष्ण के वाहन गरुड़ तथा उनके विश्वरूप को देखकर भी भक्ति से विहीन थे और जो कृष्ण को भगवान् के रूप में समझ ही नहीं पाए। यह भी मोह था, किन्तु यह महामाया के कारण था। अत: जो माया मनुष्य को भगवान् से दूर खींच ले जाती है, वह *जड़माया* और दिव्य स्तर पर कार्य करने वाली माया योगमाया है। जब नन्द महाराज को वरुण ले गया तो उन्होंने कृष्ण का वैभव देखा, किन्तु तो भी उन्हें अपना पुत्र ही समझा। आध्यात्मिक जगत में इस तरह का वात्सल्य प्रेम योगमाया का कार्य है, जड़माया या महामाया का नहीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का ऐसा मत है।

*शूरसेनांश्च।* कार्तवीर्यार्जुन का पुत्र शूरसेन था और जिन देशों में वह शासन चलाता था वे भी शूरसेन कहलाते थे। ऐसी टिप्पणी सनातन गोस्वामी कृत *वैष्णव तोषणी* टीका में है।

मथुरा के विषय में निम्नलिखित उद्धरण आया है—

*मथ्यते तु जगत् सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।*

*तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते॥*

जब कोई स्वरूपसिद्ध अपने दिव्य पद पर स्थित होकर कर्म करता है, तो उसका पद मथुरा कहलाता है। दूसरे शब्दों में, जब कोई व्यक्ति भक्तियोग की विधि से कर्म करता है, तो वह चाहे जहाँ रहे, किन्तु वास्तव में वह मथुरा–वृन्दावन में होता है। नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण की भक्ति ही समस्त ज्ञान का सार है और ऐसा ज्ञान जहाँ भी प्रकट किया जाता है उस स्थान को मथुरा कहा जाता है। अपरंच, जब कोई व्यक्ति अन्य विधियों को छोड़कर भक्तियोग की स्थापना करता है, तो उसकी स्थिति मथुरा कहलाती है। *यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः*—जिस स्थान में भगवान् नित्य रहते हैं वह मथुरा कहलाता है। भगवान् नित्य हैं और उनका धाम नित्य है। *गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतः।* यद्यपि भगवान् अपने धाम गोलोक वृन्दावन में नित्यवास करते हैं, किन्तु वे सर्वत्र पूर्ण रूप से विद्यमान रहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब भगवान् इस विश्व पर अवतरित होते हैं, तो उनका आदि धाम रिक्त नहीं रहता क्योंकि वे अपने मूलधाम में रहते हुए मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या इत्यादि स्थानों में एकसाथ अवतरित हो सकते हैं। उन्हें अवतरित होने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती क्योंकि वे पहले से वहाँ विद्यमान रहते हैं। बस, उन्हें अपने आपको प्रकट करना होता है।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को *तात* अर्थात् ''प्रिय पुत्र'' कहकर सम्बोधित किया है। अपने अंत:करण में वात्सल्य प्रेम होने के कारण ही शुकदेव गोस्वामी ने इस शब्द का प्रयोग किया है। चूँकि शीघ्र ही वसुदेव तथा देवकी के पुत्र रूप में कृष्ण उत्पन्न होने वाले थे इसलिए शुकदेव गोस्वामी ने वात्सल्य प्रेम के कारण महाराज परीक्षित को *तात* कहा है।

विश्वकोश में *गर्भ* शब्द की व्याख्या इस प्रकार है—*गर्भो भ्रूणे अर्भके कुक्षावित्यादि।* जब कंस देवकी को मारने वाला था, तो वसुदेव ने उसे रोकने के लिए *साम* तथा *भेद* कूटनीति का सहारा लिया। *साम* का अर्थ है ''सान्त्वना देना।'' वसुदेव ने कंस को सम्बन्ध, लाभ, कल्याण, पहचान तथा गुणानुवाद द्वारा सान्त्वना देनी चाही। इन पाँचों का सन्दर्भ *साम* के अन्तर्गत आता है। वसुदेव द्वारा इस जीवन तथा अगले जीवन में भय प्रस्तुत करना *भेद* था। इस तरह वसुदेव ने कंस को सान्त्वना देने के लिए साम तथा भेद का प्रयोग किया। कंस के गुणों की प्रशंसा करना गुणानुवाद था और भोजवंश का

उत्तराधिकारी कहना *सम्बन्ध* का द्योतक था। ''तुम्हारी बहन'' से पहचान का बोध कराना था। स्त्री की हत्या के उल्लेख से यश तथा कल्याण विषयक प्रश्न उठते हैं और विवाह के समय अपनी बहन की हत्या का पापपूर्ण कृत्य भय उत्पन्न करता है, जो *भेद* का एक पक्ष है। भोज वंश उन लोगों का द्योतक है, जो एकमात्र इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते थे अतएव अधिक कुलीन नहीं थे। *भोज* का अन्य अर्थ है ''युद्ध करना।'' ये सभी कंस के अपयश के लक्षण थे। जब वसुदेव ने कंस को *दीनवत्सल* कहा तो यह अतिशय प्रशंसा थी। चूँकि कंस अपने गरीब राज्यों से कर के रूप में बछड़े लिया करता था इसलिए भी वह *दीनवत्सल* कहलाता था। वसुदेव को पता था कि वे बल-प्रयोग से देवकी को आसन्न संकट से नहीं बचा सकेंगे। देवकी वास्तव में कंस के चाचा की लड़की थी इसीलिए देवकी को *सुहृत्* अर्थात् ''सम्बन्धी'' कहा गया है। कहा जाता है कि कंस ने अपने निकट सम्बन्धी देवकी की हत्या इसीलिए नहीं की क्योंकि तब परिवार के अन्य सदस्यों में महान् युद्ध छिड़ जाता। कंस इस संकट से बचना चाह रहा था क्योंकि इससे अनेक लोगों की जानें चली जातीं।

पूर्व काल में कालनेमि नामक असुर के छह पुत्र हुए जिनके नाम थे हंस, सुविक्रम, क्राथ, दमन, रिपुर्मर्दन तथा क्रोधहन्ता। ये *षड्गर्भ* कहलाए। ये छहों समान बलशाली तथा युद्धकला में निपुण थे। इन छहों ने अपने बाबा हिरण्यकशिपु का साथ छोड़ दिया और ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए कठिन तपस्या की। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर मुँहमाँगा वर देने के लिए कहा। इस पर षड्गर्भों ने कहा, ''हे ब्रह्माजी! यदि आप हमें वर देना ही चाहते हैं, तो हमें यह आशीर्वाद दीजिए कि हम किसी देवता, महारोग, यक्ष, गन्धर्वपति, सिद्ध, चारण या मनुष्य अथवा अपनी तपस्याओं में पूर्ण किसी भी महर्षि द्वारा मारे न जा सकें।'' ब्रह्मा उनके मनोभाव जान गए अत: उन्होंने उनकी इच्छा पूरी कर दी। किन्तु जब हिरण्यकशिपु को इसका पता चला तो वह अपने पौत्रों पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने कहा, ''मेरा साथ छोड़कर तुम लोग ब्रह्मा की पूजा करने गए। अत: अब मैं तुमसे नाता तोड़ता हूँ। तुम लोगों ने अपने आपको देवताओं से बचने का प्रयत्न किया है लेकिन मैं तुम लोगों को शाप देता हूँ कि तुम्हारा पिता कंस के रूप में जन्म लेगा और तुम छहों देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने पर कंस द्वारा मारे जाओ। इसी शाप के कारण हिरण्यकशिपु के पौत्रों को देवकी के गर्भ से जन्म लेना पड़ा और कंस द्वारा उनका वध होना ही था, भले ही पूर्वजन्म में वह उनका पिता क्यों न रहा हो। यह वर्णन हरिवंश के विष्णुपर्व

के द्वितीय अध्याय में मिलता है। ''वैष्णवतोषणी'' टीका के अनुसार कीर्तिमान नामक देवकी का पुत्र तीसरा अवतार था। अपने पहले अवतार में वह मरीचि का पुत्र स्मर था, जो बाद में कालनेमि का पुत्र बना। पुराणों में इसका उल्लेख मिलता है।

*श्रीमद्भागवत* के इस अध्याय में मध्वाचार्य सम्प्रदाय द्वारा स्वीकृत जिसका प्रतिनिधित्व विजय ध्वज तीर्थ करते हैं, एक अतिरिक्त श्लोक मिलता है, जो इस प्रकार है—

*अथ कंसं उपागम्य नारदो ब्रह्मनन्दनः।*

*एकान्तमुपसंगम्य वाक्यमेतदुवाच ह॥*

अथ—इस प्रकार; कंसम्—कंस के पास; उपागम्य—जाकर; नारदः—महामुनि नारद; ब्रह्मनन्दनः—ब्रह्माजी के पुत्र; एकान्तमुपसंगम्य—एकान्त स्थान में जाकर; वाक्यम्—सूचना; एतत्—यह; उवाच—कहा; ह—निश्चित रूप से।

**''तत्पश्चात् ब्रह्मा के मानस पुत्र नारद कंस के पास गये और एकान्त स्थान में उन्होंने उसे निम्नलिखित जानकारी दी।''**

महान् मुनि नारद स्वर्ग से मथुरा आए और उन्होंने कंस के पास अपना दूत भेजा। जब दूत ने कंस के पास जाकर नारद के आने की जानकारी दी तो असुरों का मुखिया कंस अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वह तुरन्त ही उनके स्वागतार्थ अपने महल से बाहर आया। नारद मुनि सूर्य जैसे तेजस्वी थे, अग्नि जैसे शक्तिशाली थे और सभी प्रकार के पाप-कृत्यों से रहित थे। कंस ने अतिथि के रूप में सत्कार करते हुए उन्हें सादर नमस्कार किया और सूर्य सदृश देदीप्यमान सोने के सिंहासन पर बिठाया। नारद स्वर्ग के राजा के मित्र थे अतएव उन्होंने उग्रसेन के पुत्र कंस से कहा, ''हे शूरवीर! मैं तुम्हारे आतिथ्य से प्रसन्न हूँ अतएव मैं तुमसे कुछ गुप्त बातें कहूँगा। जब मैं नन्दन कानन के चैत्ररथ जंगल से होकर यहाँ आ रहा था, तो मैंने देवताओं की एक विशाल सभा देखी और ये देवता मेरे साथ सुमेरु पर्वत तक आए। हम अनेक तीर्थस्थलों में गए और अन्त में हमने पवित्र गंगा नदी का दर्शन किया। जब ब्रह्माजी अन्य देवताओं के साथ सुमेरु पर्वत पर मंत्रणा कर रहे थे तो मैं भी अपनी वीणा के साथ वहाँ उपस्थित था। मैं तुम्हें गुप्त रूप से बतलाऊँगा कि यह सभा तुम समेत सारे असुरों को मार डालने की योजना बनाने के लिए की गई थी। तुम्हारी छोटी बहन देवकी है न! और यह तथ्य है कि उसका आठवाँ पुत्र तुम्हारा वध करेगा। (*हरिवंश, विष्णु पर्व,* १.२१६)

नारद पर कोई यह दोषारोपण नहीं कर सकता कि उन्होंने देवकी के पुत्रों का वध करने के लिए

कंस को प्रोत्साहित किया। नारद मुनि तो मानव समाज के सतत् शुभचिन्तक हैं। वे चाहते थे कि जितनी जल्दी हो सके, कृष्ण इस धरा पर अवतरित हों जिससे देवताओं का समाज प्रसन्न हो और कंस तथा उसके मित्रों का कृष्ण द्वारा वध देखें। कंस को भी अपने कुकृत्यों से मोक्ष प्राप्त हो सके। इससे देवताओं तथा उनके अनुयायियों को परम प्रसन्नता होगी। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि नारदमुनि कभी-कभी ऐसे कार्य करते थे, जो देवताओं तथा असुरों को एक साथ लाभप्रद होते थे। इस प्रसंग में श्री वीरराघव आचार्य ने अपनी टीका में निम्नलिखित आधा श्लोक सम्मिलित किया है—

*असुराः सर्व एवैत लोकोपद्रवकारिणः*

असुरगण सदा-सदा ही मानव समाज के लिए उपद्रवी तत्त्व रहे हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार:परिचय" नामक प्रथम अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।